

राष्ट्रीय एकात्मता की सतत प्रवहमान धारा का सन्दर्भ अनल-प्रकाश : एक समीक्षात्मक अध्ययन

इस समीक्षात्मक अध्ययन (अन्तर्दृष्टि) के प्रकाशन के लिए भारत सरकार, शिक्षा विभाग के पत्र सं० F. 5-1/90-D : I (L) दिनांक 23-9-1991 के अन्तर्गत मंजूर आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है। कापीराइट लेखक के पास है।

सदन-साहित्य

पिता की खोज (श्री गुप्त-बन्धु)	खण्ड-काव्य	रु.	31.00
श्री सत्य-व्रत कथा (श्री गुप्त-बन्धु)	कविता		2.00
हवाई घोड़ा (श्री गुप्त-बन्धु)		पुरस्कृत	10.00
कुदरती केमरा (श्री गुप्त-बन्धु)		पुरस्कृत	12.00
लोकतन्त्र का जन्म (श्री विश्वेश्वर प्रसाद गुप्त)		पुरस्कृत	10.00
अल्मोनियम की कहानी (श्री विश्वम्भर प्रसाद)			12.00
भायप (श्री गुप्त-बन्धु)	नाटक		10.00
सावित्री (श्री गुप्त-बन्धु)	नाटक		10.00
भागीरथी (श्री गुप्त-बन्धु)	खण्ड-काव्य		12.00
जगरानी मां (श्री गुप्त-बन्धु)	खण्ड-काव्य		12.00
भोजन—क्यों, क्या और कितना (श्री विश्वम्भर प्रसाद)		पुरस्कृत	
(शीघ्र पुनर्मुद्रण होगा)			
देहात की (निवास संबंधी) समस्याएं (श्री विश्वम्भर प्रसाद)		पुरस्कृत	20.00
(विरल पुस्तक)			
अचल संपत्ति का मूल्यन (श्री विश्वम्भर प्रसाद)		पुरस्कृत	15.00
(विरल पुस्तक)			
सुखदायी निवास (आवासीय वास्तुकला के मौलिक सिद्धान्त)			
(श्री विश्वम्भर प्रसाद)			20.00
भारत के प्रतिभाशाली इंजीनियर (सं० श्री ब्रजमोहन लाल)			20.00
कृषि विज्ञान प्रवेशिका (श्री विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु')		पुरस्कृत	30.00
ग्रामीण जल-आपूर्ति (श्री विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु')		पुरस्कृत	40.00
नागर जल संभरण (श्री विश्वम्भर प्रसाद 'गुप्त-बन्धु')		पुरस्कृत	40.00

आगामी प्रकाशन

बाल संवाद पंचमी (श्री गुप्त-बन्धु)	
भारत के प्रथम तीन राष्ट्रपति (श्री गुप्त-बन्धु)	
ब्रह्माण्ड हथेली पर (श्री गुप्त-बन्धु)	
भरत-मिलाप (श्री गुप्त-बन्धु)	

सर्व-सुलभ-साहित्य-सदन

(पंजीकृत कार्यालय : अश्वत्थामापुर, डा० असोथर, जिला फतेहपुर उ०प्र०)
केन्द्रस्थ कार्यालय : बी-154, लोक विहार, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

डा० महेश चन्द्र गुप्त
निदेशक (अनुसंधान)
दूरभाष : 617807



अ.शा. पत्रांक
20034/14/90. रा.भा. (पत्रिका)

भारत सरकार
Government of India
गृह मन्त्रालय
Ministry of Home Affairs

राजभाषा विभाग,
लोकनायक भवन, खान मार्केट,
नई दिल्ली-110003
दिनांक 8 जून, 1990

प्रिय डा० स्वर्णप्रभा जी,

आपकी ओर से गुप्त-बन्धु कृत अनल-प्रकाश महाकाव्य का समीक्षा-
त्मक अध्ययन नामक लिखी पुस्तिका प्राप्त हुई। आपके द्वारा हुए इस
समीक्षात्मक अध्ययन से 'अनल-प्रकाश' महाकाव्य की विशेषताओं की
जानकारी तो प्राप्त हुई ही, साथ-साथ यह देखकर भी सन्तोष हुआ कि
आपने महाकाव्य को समुचित आलोचना अपनी उक्त पुस्तिका में की है।
आपके द्वारा की गई समीक्षा से यह जानकारी मिली कि उक्त महाकाव्य
वर्तमान सन्दर्भों में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए एक उत्तम ग्रन्थ
है। समीक्षा करते हुए आपने राष्ट्रीय एकता के विभिन्न तत्वों को भली
प्रकार उजागर करने का यत्न किया है। मेरे विचार में उक्त समीक्षात्मक
अध्ययन प्रकाशन योग्य पुस्तक है। सफल लेखन के लिए हार्दिक बधाई।

आपका
महेश चन्द्र गुप्त

डा० (श्रीमती) स्वर्णप्रभा अग्रहरी
हिन्दी विभाग, दीनदयाल कालेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा० कृष्णलाल
आचार्य (प्रोफेसर), संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

दूरभाष : 7274673
विश्वनीड, ई-937
सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

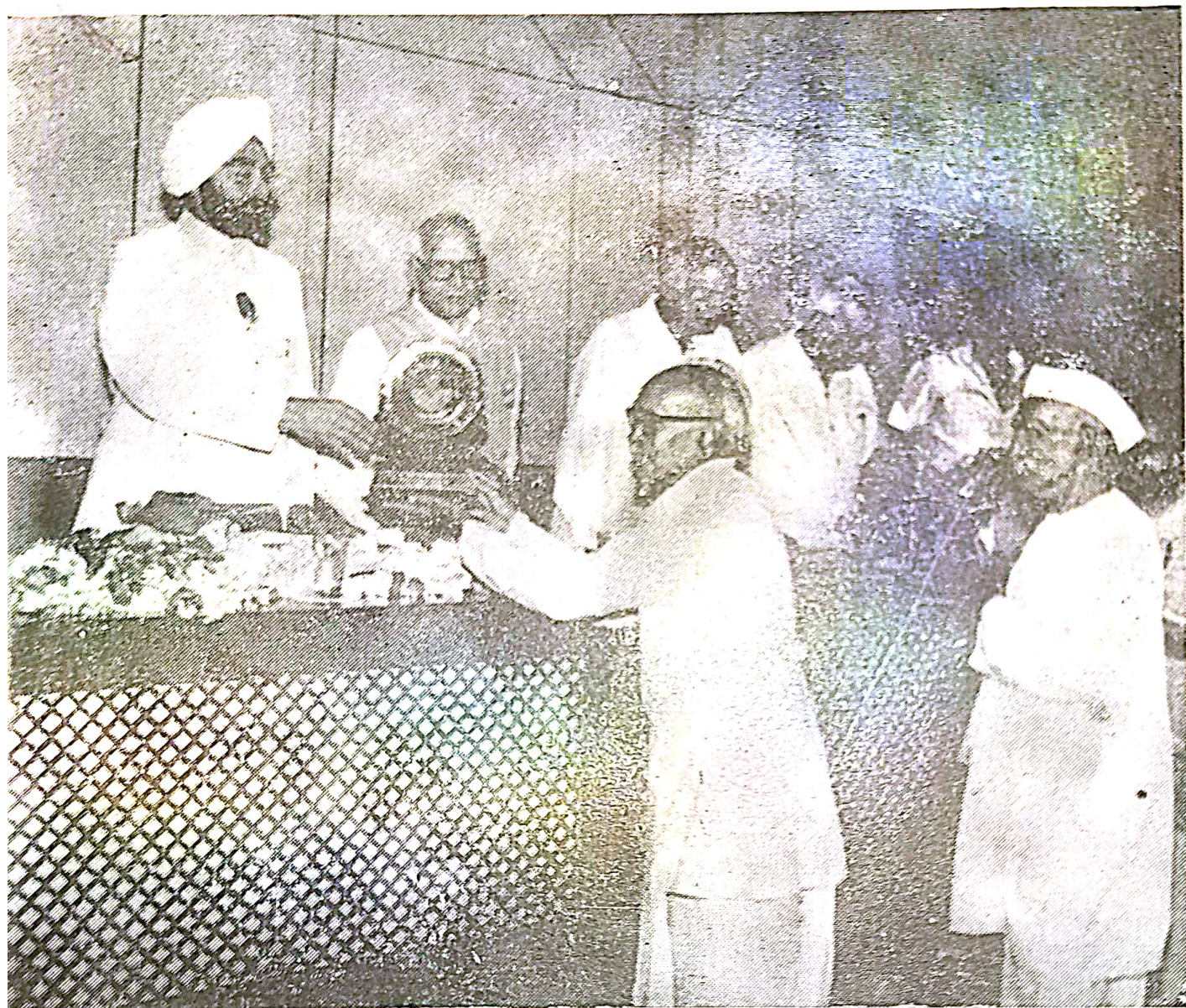
सम्मति

अनल-प्रकाश महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन, लेखिका डा० स्वर्णप्रभा अग्रहरि की समाहारात्मक योग्यता का परिचय देता है। अब तक अप्रकाशित अतीव महत्वपूर्ण महाकाव्य 'अनल-प्रकाश' में सर्वत्र प्रतिपादित भारत राष्ट्र की एकात्मता की भावना का ऐतिहासिक और भौगोलिक पृष्ठभूमि में इस पुस्तिका में प्रामाणिक विवेचन किया गया है। किस प्रकार इस राष्ट्र के निवासियों ने दुष्ट विदेशी आक्रान्ताओं और यहाँ के भी दुष्टों का सदैव प्रतिरोध किया और किस प्रकार सब परस्पर भेद-भाव भुलाकर एकरूप होकर सदा रहे हैं—यह बात महाकाव्य की इस समीक्षा में उभर कर आती है।

डा० स्वर्णप्रभा की यह समीक्षा जहाँ एक ओर अनल-प्रकाश महाकाव्य की विषय-वस्तु और विशेषता से परिचित कराती है, वहीं यह स्वतन्त्र रूप से भारत की राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय एकात्मता की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक एकसूत्रता की व्याख्या भी प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रसार के लिए और अलगाववादी शक्तियों से भारत की रक्षा हेतु जन-जन में अदम्य नव चेतना जगाने के लिए यह पुस्तक अप्रतिम है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस पुस्तक में भारत की आत्मा मुखरित हो उठी है।

कृष्णलाल

भारत के पूर्व-राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह जी द्वारा
'अनल-प्रकाश' के लोकार्पण (हिन्दी-दिवस 14-9-1992) के अवसर पर
ग्रन्थ के रचयिता 'गुप्त-बन्धु'ओं का सम्मान



पूर्व-राष्ट्रपति जी से सम्मान में सरस्वती चित्रांकित स्वर्णिम फलक प्राप्त करते हुए 'गुप्त-बन्धु' श्री विश्वम्भर प्रसाद और अग्रज श्री विश्वेश्वर प्रसाद। मंच पर खड़े हुए विद्वानों में श्री ज्ञानी जी के पास यशस्वी साहित्यकार श्री यशपाल जैन (समारोह के अध्यक्ष) हैं।

राष्ट्रीय एकात्मता की सतत प्रवहमान धारा

का सन्दर्भ

अनल-प्रकाश : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डा० (श्रीमती) स्वर्णप्रभा अग्रहरि

एम्.ए., एम्.लिट्., पी-एच्.डी.,
हिन्दी विभाग, दौलतराम कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक

सर्व-सुलभ-साहित्य-सदन

(लाभ-हानि-रहित आधार पर उत्कृष्ट एवं उपयोगी साहित्य सुलभ करने वाली संस्था)

अश्वत्थामापुर, डाकघर असोथर, जिला फतेहपुर (उ०प्र०)

प्रकाशक :

सर्व-सुलभ-साहित्य-सदन
अश्वत्थामापुर, डाकघर असोथर,
जिला फतेहपुर (उ०प्र०)

दिल्ली कार्यालय :

बी-154, लोक विहार,
पोतमपुरा, दिल्ली-110034

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण

सं० 2048 वि०

मूल्य : 95.00 रुपये

मुद्रक :

साई प्रिंटर्स,

5 स्वर्ण आश्रम मन्दिर,

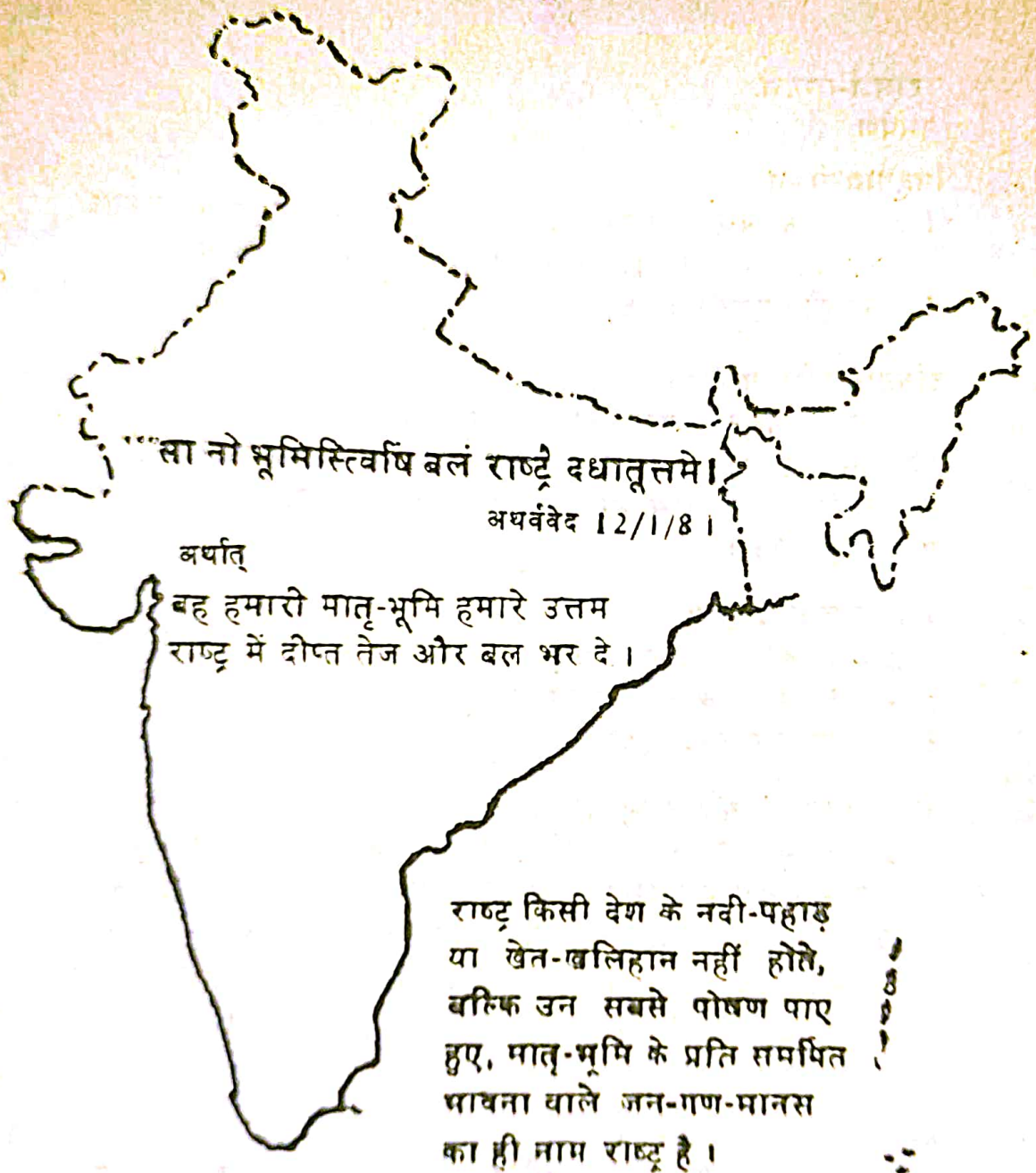
परमानन्द चौक,

दिल्ली-110009

परामर्श-मण्डल

1. पद्मभूषण पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी,
53, खुर्शेद बाग, लखनऊ ।
2. असोथर-नरेश श्री विश्वेन्द्रपाल सिंह,
एम्.ए. एल्-एल्.बी.,
असोथर, जिला फतेहपुर ।
3. डा० कृष्णलाल,
भाचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।
4. डा० महेन्द्र प्रताप सिंह,
एम्.ए., पी-एच्.डी.,
हिन्दी विभाग, देशबन्धु कालेज, दिल्ली ।
5. श्री ठाकुर शिवनारायण सिंह,
असोथर, जिला फतेहपुर ।
6. श्री उदयवीर सिंह,
एम्.ए., एल्.टी.,
प्रधानाचार्य, सर्वोदय विद्यालय,
असोथर, जिला फतेहपुर ।
7. श्री शम्भूनारायण सिंह,
एम्.ए., एल्.टी.,
प्रवक्ता, सर्वोदय विद्यालय,
असोथर, जिला फतेहपुर ।
8. श्री केशवशरण गुप्त,
रश्मि कुटी, 66 विवेक नगर,
न्यू साँगानेर रोड, जयपुर ।

समर्पण—



उसी राष्ट्र के प्रति

मानस में राष्ट्र-प्रेम की ज्योति जगानेवाले

ये पत्र-पुष्प

श्रद्धासहित समर्पित हैं।

अन्तर्दृष्टि
को अनुक्रमणिका

	पृष्ठ
परामर्श-मण्डल	6
समर्पण	7
1. विहगावलोकन	13
1.2 फूट की बेल (14); 1.3 अंग्रेजी शासन, राष्ट्रीय एकता विरोधी षड्यन्त्र (15); 1.4 राष्ट्रीय एकता के दीवाने (17); 1.5 राष्ट्रीय एकता (18) ।	
2. इतिहास और साहित्य	23
2.2 युद्ध, शान्ति और इतिहास (23); 2.3 पाप, पुण्य और इतिहास (26); 2.4 साहित्यकार बनाम इतिहासकार (29); 2.5 साहित्य इतिहास का निचोड़ है (31); 2.6 साहित्य और संस्कृति (32) ।	
3. अनल-प्रकाश : कथ्य	36
3.2 धर्म और समाज (36); 3.3 राष्ट्र और समाज (38); 3.4 राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य (40); 3.5 हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद (42) ।	
4. अनल-प्रकाश : एक राष्ट्र-संगीत	44
4.2 पौराणिक उल्लेख (45); 4.3 भौगोलिक एकता (46); 4.4 ऐतिहासिक/राजनीतिक एकता (52); 4.5 धार्मिक एकता (56); 4.5.2 धर्म के नाम पर मत-मतान्तर (58); 4.5.3 मानव-धर्म और भारत (59); 4.5.4 इस्लाम और भारत का धर्म (60); 4.5.4 विविधता का शतदल (61); 4.5.6 राष्ट्र- व्यापी धार्मिक एकात्मता (63) ।	
5. अनल-प्रकाश : एक परिचय	65
5.2 पहिली किरण : खीची चौहान (65); 5.3 दूसरी किरण : धीर धारू (67); 5.4 तीसरी किरण : दिल्लीश प्रतिक्रिया (68); 5.5 चौथी किरण : सद्धर्म दुन्दुभि (69); 5.6 पाँचवीं किरण : भागीरथी (71); 5.7 छठी किरण : माणिक-परिणय (72); 5.8 सातवीं किरण : असोथर-पुनरुद्धार (73); 5.9 आठवीं किरण : खीची भगवन्तराय (75); 5.10 उत्तरपीठिका : क्रान्ति-रेखण (76) ।	
6. आदि प्रेरणा-स्रोत	79
7. अनल-प्रकाश के रचयिता गुप्त-बन्धु	83
8. सन्दर्भ-सूची	89

अनल-प्रकाश महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन

अनल-प्रकाश
की अनुक्रमणिका

वेदवाणी	पृष्ठ 92
भाषानुवाद	93
श्री गणेश	94
मंगला चरण	---	---	94
राष्ट्र-वन्दना	96
पूर्व-पीठिका	आभार	...	97
पहिली किरण	—खीची चौहान	...	103
	राष्ट्र-वन्दना	...	104
	पूर्व खण्ड—अनल-उद्भव		105
	मध्य खण्ड—चौहान-चन्द्रिका		111
	उत्तर खण्ड—खीची-यज्ञ		116
दूसरी किरण	—धीर धारू		125
	राष्ट्र-वन्दना	...	126
	पूर्व खण्ड—प्रबल प्रतिरोध		127
	मध्य खण्ड—धारू विजय		135
	उत्तर खण्ड—पुत्र-शोक		141
तीसरी किरण	—दिल्लीश-प्रतिक्रिया		147
	राष्ट्र-वन्दना	...	148
	पूर्व खण्ड—प्रतिगोध		149
	मध्य खण्ड—धारू-स्वर्गारोहण		154
	उत्तर खण्ड—धर्म-संकट		159
चौथी किरण	—सद्धर्म-दुन्दुभि		167
	राष्ट्र-वन्दना	...	168
	पूर्व खण्ड—मार्गान्वेषण		169
	मध्य खण्ड—महाभिनिष्क्रमण		177
	उत्तर खण्ड—शक्ति-संचयन		186

पांचवी किरण	— भागीरथी	197
	राष्ट्र-वन्दना	198
	पूर्व खण्ड—गंगा-योजना	199
	मध्य खण्ड—भागीरथ-तपस्या	211
	उत्तर खण्ड—भागीरथी-अवतरण	222
छठी किरण	— माणिक-परिणय	231
	राष्ट्र-वन्दना	232
	पूर्व खण्ड—त्रिवेणी-स्नान	233
	मध्य खण्ड—खीचीवर-परिचय	239
	उत्तर खण्ड—पाणि-ग्रहण	247
सातवीं किरण	— असोथर-पुनरुद्धार	259
	राष्ट्र-वन्दना	260
	पूर्व खण्ड—मृगया-विहार	261
	मध्य खण्ड—द्रौणि-दर्शन	271
	उत्तर खण्ड—वृहद्राजधानी-विकास	278
आठवीं किरण	— खीची भगवन्तराय	287
	राष्ट्र-वन्दना	288
	पूर्व खण्ड—भगवन्त-अवतार	289
	मध्य खण्ड—भगवन्त आल्हा	299
	उत्तर खण्ड—महाप्रयाण	330
उत्तर-पीठिका	— क्रान्ति-रेखण	345

राष्ट्रीय एकात्मता की सतत प्रवहमान धारा

का सन्दर्भ

गुप्त-बन्धु कृत

अनल-प्रकाश महाकाव्य

अन्तर्दृष्टि

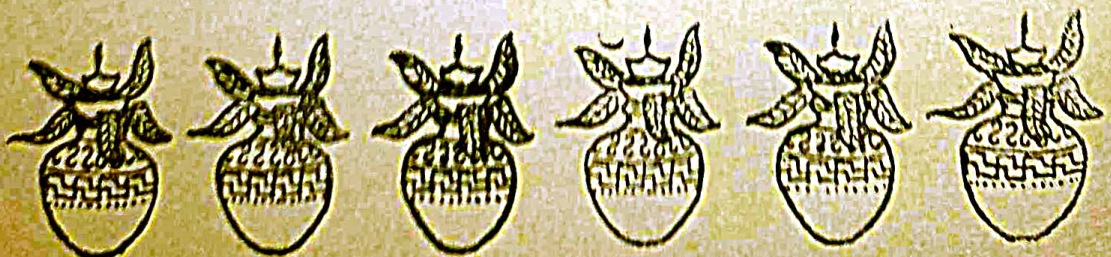
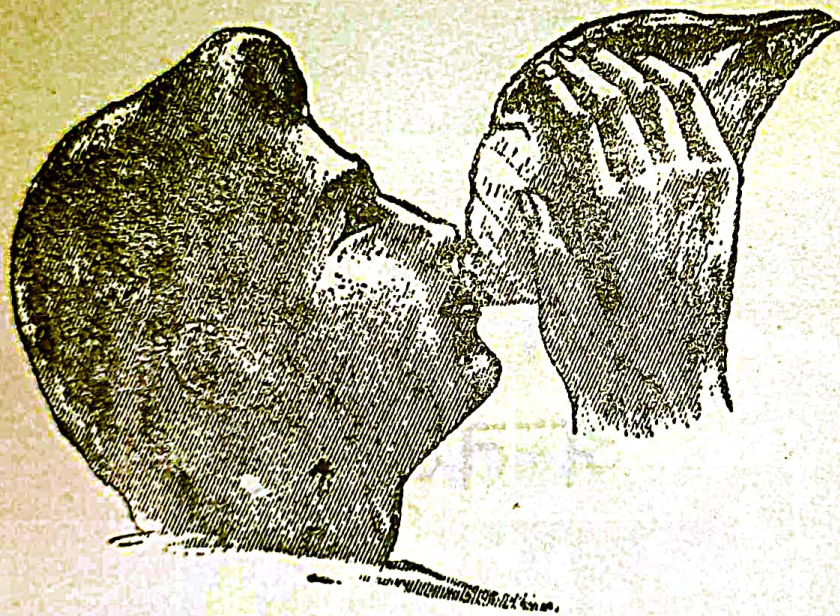


वयं राष्ट्रे जागृत्याम ।

(यजुर्वेद)

अर्थात्

हम राष्ट्र के प्रति सजग रहें ।



1. विहगावलोकन

भारत के भूतपूर्व अंग्रेज शासकों ने अन्तरराष्ट्रीय और भारतीय जन-मत को भुलावे में डालने के लिए एक ग़लत धारणा बनाकर उसका प्रचार किया कि उन्होंने ही सारे भारत को एक बनाया, नहीं तो यह अनेक राज्यों में बंटा हुआ था। उन्होंने यहां तक कहा कि भारत एक देश नहीं, बल्कि एक उप-महाद्वीप है जिसमें अनेक देश, अनेक राज्य हैं। वास्तव में यह भावना अंग्रेजों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भारतीय शासकों में फूट डालने के उद्देश्य से फैलाई थी। न केवल शासकों में, बल्कि अलग-अलग जातियों में फूट डालने का भी उन्होंने सफल प्रयास किया।

मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की साम्प्रदायिक कट्टरता से और फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उत्पीड़क शासन से क्षुब्ध जनता ने स्वतंत्रता का पहिला संग्राम 1857 ई० में छेड़ा था। उस समय भारतीय जनता के सर्वमान्य सत्ताधारी तीन समझे जाते थे : एक मुग़ल वंशज दिल्ली के बादशाह जिनकी सार्वभौमता ईसा की अठारहवीं सदी में ही समाप्त हो गई थी, दूसरे अवध के नवाब-वज़ीर जो मुग़लों के साथ ही प्रभावहीन हो चुके थे, और तीसरे मराठों के पेशवा जिन्होंने मुग़लों से सन्धि करके उनके अधीन प्रदेशों से चौथ और सरदेशमुखी के रूप में लगान का 34 प्रतिशत वसूल करने, तथा इसके बदले मुग़ल बादशाह की रक्षा के लिए 15 हजार मराठा सैनिकों की फौज दिल्ली में रखने का अधिकार ले लिया था और मुग़लों का कोई अधिकार शिवाजी के राज्य पर न रहने की शर्त रखी थी। इन तीनों के मार्ग-दर्शन में सारे भारत के सभी वर्गों, सभी सम्प्रदायों, सभी जातियों और सभी भाषा-भाषियों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर अद्भुत राष्ट्रीय एकता का परिचय देते हुए उस स्वतंत्रता-संग्राम में, जिसे अंग्रेजों ने सैनिक विद्रोह (ग़दर) नाम से प्रचारित किया था, अंग्रेजों को करारी मार दी। क्रान्ति बेशक असफल हुई; किन्तु अंग्रेजों ने एक

सबक भी सीखा कि भारत में मुद्दत से चली आई राष्ट्रीय एकता जब तक भंग नहीं होती, तब तक यहां उनकी दाल नहीं गलेगी ।

1.2 फूट की बेल

बस, भारत पर शासन करने के लिए अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की कुटिल नीति अपनाई । ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन तो बर्बरो और दुष्टों का था ही, सन् 1857 ई० के बाद का अंग्रेजी शासन भी कुछ कम कुटिलतापूर्ण नहीं रहा । अन्तर केवल यह था कि बाद वाले शासक कुछ अधिक अनुभवी और चतुर हो गए थे, इसलिए वे शस्त्र-बल से नहीं, कूटनीति के बल से, देश के मित्र बनकर, सुधारों के नाम पर फूट की बेल ही सींचते रहे । सर्वप्रथम सन् 1906 ई० में आगा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों के एक शिष्ट-मण्डल को तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिण्टो ने आमंत्रित किया था । लार्ड मिण्टो ने उन्हें 'पृथक निर्वाचन' का आश्वासन देते हुए कहा था कि "एक सम्प्रदाय या जाति के रूप में उनके राजनीतिक अधिकारों और हितों की रक्षा की जाएगी" । इस प्रकार अंग्रेजों की कूट-

1. जेम्स प्रथम की पूर्ववर्ती रानी एलिज़बेथ ने 1600 ई० में भारत के साथ व्यापार करने के इच्छुक व्यापारियों की एक मण्डली 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नाम से बनाई जिसके लिए जारी फर्मान में कम्पनी को इस तरह के साहसी लोगों की मण्डली कहा गया है, जो लूट, सट्टे आदि के लिए निकलते हैं और अपने धन कमाने के उपायों में सच-झूठ, ईमानदारी-वैईमानी अथवा न्याय-अन्याय का अधिक ख्याल नहीं रखते ।

Bruce ने *Annals of the Hon'ble East India Company*, vol. I, P. 128 में लिखा है कि डाइरेक्टरों ने शुरू में ही इस बात का फैसला कर लिया था कि हम "किसी जिम्मेदारी की जगह किसी शरीफ आदमी को नियुक्त न करेंगे" और मलिका के नाम अपनी दरखास्त में लिख दिया था कि "हमें अपना व्यापार अपने ही आदमियों द्वारा चलाने की इजाजत होनी चाहिए क्योंकि यदि लोगों को इस बात का संदेह हो गया कि हम शरीफ आदमियों को अपने यहां नौकर रखेंगे तो मुमकिन है हमारे बहुत से साहसिक पत्नीदार अपनी पत्नियां वापस ले लें ।"

भारत में अंगरेजी राज, पहिली जिल्द, पृष्ठ 12 : सुन्दरलाल

नीति ने जातीय बैसनस्य का जो बीज भारत की राजनीति में बोया, उसके महत्व को अनुभव करते हुए एक अफसर ने लेडी मिण्टो को लिखा था, "यह राजनीतिक पटुता का एक कार्य हुआ है जो भारत और भारतीय इतिहास को दीर्घ काल तक प्रभावित करेगा।" वास्तव में देश के विभाजन का बीज भी यही था और मुस्लिम लीग की स्थापना भी उसी वर्ष हुई थी।

सन् 1909 ई० में 'माले-मिण्टो सुधार' लागू किए गए और पृथक् निर्वाचन की पद्धति कार्यान्वित हुई। फिर 1919 ई० में 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' जारी किए गए; उनमें भी यह पृथक् निर्वाचन की विष-बेलि अपनी सभी शाखा-प्रशाखाओं सहित विद्यमान थी। इन तथाकथित सुधारों के अनुसार यूरोपियनों, ऐंग्लो-इण्डियनों, भारतीय ईसाइयों और पंजाब में सिक्खों, इन सबके लिए पृथक् निर्वाचन का विधान किया गया। यानी ये सब अलग-अलग वर्ग बना दिए गए, जो प्रत्येक अपना-अपना अलग प्रतिनिधि चुन सकते थे। इस प्रकार 'सुधार' नाम देकर एक राष्ट्र के भीतर ही ये अलग-अलग वर्ग बनाकर अलगाव पनपाया गया। दूसरे शब्दों में पाकिस्तान का, और उसके बाद बराबर बढ़ती हुई अलगाव-वादी भावना का ऐसा बीजारोपण 1909 ई० के ऐक्ट में अंग्रेजों ने किया जिसका विषैला प्रभाव आज तक उत्तर, पूर्व और दक्षिण में, सर्वत्र देखा जा रहा है।

दुख इस बात का है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी हम अंग्रेजों का वह कपट पहिचानने में असमर्थ रहे, अपने हजारों साल के इतिहास का ठीक-ठीक अर्थ समझने की ओर से उदासीन रहे, जन-मानस को उपयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा देकर अपनी अस्मिता का बोध कराने से कतराते रहे और एक राष्ट्र की जो भावना वैदिक युग से बराबर यहां पलती रही है, उसे उभारने का कोई प्रयास नहीं कर सके।

1.3 अंग्रेजी शासन : राष्ट्रीय एकता विरोधी षड्यन्त्र

'पृथक् निर्वाचन' ब्रिटिश राजनीति का एक स्थायी तत्त्व बन गया था। वास्तव में भारत की राष्ट्रीय एकता और भारतीयों की जातीय एकता विघटित करने के लिए यह अंग्रेजों की एक कुटिल चाल थी जिसे महात्मा गांधी ने इस सदी के चौथे दशक में ही पहिचान लिया था, जब 1932 ई० के 'साम्प्रदायिक निर्णय' के अनुसार अछूतों को भी हिन्दुओं से

अलग कर दिया गया था और उनके लिए 'पृथक् निर्वाचन' की व्यवस्था की गई थी। वह तो जब महात्मा गांधी ने आभरण अनशन करके अपने प्राणों की बाजी लगा दी, तब कहीं पूना (पुणे) में आपसी समझौता हुआ और अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन रद्द कर दिया गया। यदि कहीं अंग्रेजों की वह चाल भी सफल हो जाती, तो आज 'खालिस्तान' जैसे ही किसी 'अछूतिस्तान' की भी मांग जोर पकड़ सकती थी।

यह सही है कि अंग्रेजों ने सारे भारत को जीतकर राजनीतिक एकता स्थापित की थी। केन्द्रीय मुगल सत्ता के शक्तिहीन होने के कारण उन्होंने राष्ट्र का विखण्डन आसानी से करके सत्ता अपने हाथों में समेटी। अनल-प्रकाश की पहिली किरण के पूर्व खण्ड का आरम्भ इसी शाश्वत सत्य से होता है :

“वह शक्ति-पुंज, वह परम ईश ही नियमों में बांधे रहता,
है इस विस्तृत खगोल को; सब कुछ तभी नियन्त्रण में रहता।
वह शक्ति न हो तो इसका विघटन और विनाश सुनिश्चित है;
ज्यों केन्द्र अशक्त हुए अनियन्त्रित होता राष्ट्र विखण्डित है।”

अनल-प्रकाश, अनल-उद्भव 1।

किन्तु अंग्रेजों द्वारा स्थापित राजनीतिक एकता भारत की राष्ट्रीय एकता नहीं थी। राष्ट्रीय एकता की नींव होती है जातीय एकता, जिसे भंग करने के लिए ही अंग्रेजों ने पृथक् निर्वाचन की प्रणाली आरम्भ की थी, और सफलतापूर्वक 'पाकिस्तान' स्थापित कर अन्य वर्गों के लिए भी उन्हीं की देखा-देखी अलग राज्य की मांग का पथ प्रणस्त कर दिया था। शास्त्र में 1857 ई० के कुछ पहिले और उसके भी बहुत पहिले 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का वैदिक आदर्श मानने वाले भारत-माता के सभी

2. यस्य मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तम्बः संवभूषुः ।

तासु नो धेनुभि नः पयस्व माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

यजुर्वेदः पितृ स उ मा पिपत् ॥ अथर्ववेद 12/1/12 ।

अर्थात् हे पृथ्वी (पृथ्वीमाता) तेरे मध्य भाग में और तेरे नाभि भाग में
छापन होनेवाली जो वस्तुएं हैं और अन्न, रस आदि बलकारक पदार्थ जो तेरे

सपूतों—सभी विभिन्न वर्गों में पारस्परिक सौहार्द और प्रेम की एक शाश्वत धारा प्रवहमान थी, जिसे चालाक अंग्रेजों ने सुखा दिया था। उसे फिर से खोद निकालने की महती आवश्यकता थी, जिसका प्रयास 'अनल-प्रकाश' में सफलतापूर्वक किया गया है।

1.4 राष्ट्रीय एकता के दीवाने

'अनल-प्रकाश' महाकाव्य में यशस्वी कृतिकारों ने अनल वंश के उन तेजस्वी महापुरुषों के चरित्र का वर्णन किया है जिन्होंने राष्ट्र की अखण्डता और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपना जीवन होमते हुए भारत की राष्ट्रीय एकता बनाए रखने का प्रयास किया है। प्राचीन सूर्य वंश और चन्द्र वंश की भांति 'अनल वंश' या 'अग्नि वंश' के नाम से प्रसिद्ध इस वंश का उद्भव ही राक्षसों (अनायों) के उत्पात से देश की रक्षा करने के लिए हुआ था। महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में आयोजित एक महायज्ञ से प्रादुर्भूत होने के कारण इसका नाम 'अग्नि वंश' हुआ अथवा इसके आदि पुरुष अनलराव के नाम से यह 'अनल वंश' कहा जाने लगा, ये दोनों ही विचार तर्क-सम्मत और साथक हैं। भारतीय इतिहास तथा साहित्य के ग्रन्थों में इस वंश के महापुरुषों का वृत्त अनेक स्थलों पर बिखरा हुआ मिलता है। 'अनल-प्रकाश' की पूर्व-पीठिका में ही कृतिकारों ने ऐसे 23 स्रोतों का साभार उल्लेख किया है जहाँ से उन्होंने रचना की आधार-सामग्री प्राप्त की है।

अनल वंशी क्षत्रिय ही आगे चलकर खीची चौहान कहलाए। इन राजाओं ने देश के विभिन्न भागों में जा-जाकर स्थानीय नरेशों की सहायता करते हुए विदेशी आक्रान्ताओं से लोहा लिया और प्राणों का

शरीर से उत्पन्न होते हैं, वे सब तू हमें प्रदान कर। तू, भूमि, मेरी माता है और मैं पृथ्वीपुत्र (किसान) हूँ। अन्नादि उत्पन्न करने वाला (मेघ अथवा परमात्मा) हमारा पालन करने वाला (पिता) है। वह भी हमारा पालन करे, हमें पूर्ण बनाए। (कृषि-प्रधान देश भारत की यह वैदिक प्रार्थना एक माता-पिता के पुत्र होने के नाते सभी को भाई-भाई बनकर रहने का आदर्श सन्देश भी देती है, उनके वर्ग, मत-मतांतर, विश्वास और भाषाएं चाहे कितनी ही भिन्न क्यों न हों।)

उत्सर्ग करके भी अपने राष्ट्र की रक्षा की। राष्ट्र-रूपी भवन भौगोलिक एकता की भूमि पर बनता है; परन्तु उसकी नींव रखी जाती है जातीय एकता पर; और उसका निर्माण होता है भावनात्मक एकता से; उस पर छत रखी जाती है राजनीतिक एकता की। भारत की राष्ट्रीय एकता का इतिहास वास्तव में उन प्रयासों का इतिहास है जो देश की जातीय, भावनात्मक और राजनीतिक एकता के लिए समय-समय पर किए गए थे। रघुवंश, चन्द्रवंश/यदुवंश के महापुरुषों/राजाओं ने जो प्रयास किए थे, उनपर तो श्रेष्ठतम महाकाव्य लिखे ही गए हैं, बल्कि लिखे ही जाते रहे हैं; किन्तु अनलवंशी राजाओं के ऐसे ही प्रयासों पर 'अनल-प्रकाश' नाम से एक मौलिक रचना गुप्त-बन्धुओं ने ही प्रस्तुत की है। कवियों द्वारा किए हुए उल्लेख के अनुसार इस रचना का आरम्भ रामनवमी सं० 2013 विक्रमी (सन् 1956 ई०) को हुआ था। इसका एक अंश (पांचवीं किरण) 'भागोरथी' नाम से सं० 2017 विक्रमी में ही प्रकाशित और विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो चुका है। शेष अप्रकाशित ही रह गया और शायद कुछ-कुछ अपूर्ण भी था। पत्रों और अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि इसके पूर्ण होने में तीन दशक से अधिक लगे हैं। इस बीच रचनाकारों द्वारा भी शोध-कार्य बराबर चलता रहा है। इस कृति से स्थान-स्थान पर राष्ट्रीयता और राष्ट्र-एकात्मता के झरने झर रहे हैं। महाकाव्य में पूर्व-पीठिका और उत्तर-पीठिका के अतिरिक्त आठ किरणें हैं, और प्रत्येक के आरम्भ में एक-एक राष्ट्र-वन्दना दी गई है जिनमें देश के उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए पवित्र-स्थलों का और महापुरुषों का स्मरण करते हुए उन्हें राष्ट्रीय एकात्मता स्तोत्र की कड़ी का स्वरूप दिया गया है।

1.5 राष्ट्रीय एकता

वैदिक सभ्यता का उदय भारत में हुआ और उससे प्रभावित वर्ग अपने को आर्य कहने लगा। जिस क्षेत्र में आर्यों (श्रेष्ठों) की अधिकता थी, वह आर्यावर्त कहा जाता था। किन्तु भारत में (बल्कि आर्यावर्त में ही) और भी अनेक वर्ग थे जो आर्यों से इतर होते हुए भी उनके साथ यहां रहते थे और स्वयं को भारतीय ही कहते थे। उदाहरण के लिए एक प्रदेश 'खस' कहलाता था; वहां के निवासी 'खस' लोग नेपाल तक फैले हुए

गढ़वाल के उत्तरी भाग में रहते थे । 'औड़' उड़ीसा में रहते थे । ये सब भारत को ही अपना देश मानते हुए भार्यों के साथ मिलकर (और कभी लड़ते-झगड़ते हुए भी) रहा करते थे । बाहर से आने वाली अनेक जातियाँ भी यहाँ आईं और भारतीयों में ही खप गईं । जैसे यूनान के यवन, शकद्वीप (मध्य एशिया) के शक और पश्चिमोत्तर एशिया के हूण आदि भारतीय ही बन गए । गुप्त-बन्धुओं के अनुसार :

“यों ही शक, पहलव, हूणादिक हमलावर आए ;
किन्तु यहीं बस भारतीय ही सारे कहलाए ।
आत्मसात हो गए यहाँ सब, बन भारत-सन्तान ।
यह प्रभु की प्रिय भूमि जहाँ से फैला वैदिक ज्ञान ।”

अनल प्रकाश, क्रान्ति-रेखण 11 ।

शक जाति का तो 200 ई० पू० भारत के मथुरा और महाराष्ट्र प्रदेशों पर 190 साल तक शासन रहा । प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क इसी जाति के थे । अफगान, मुगल आदि भी आक्रान्ता बनकर आए थे, किन्तु यहीं बस गए और बहुतेरे तो अपने को भारतीय कहकर गौरवान्वित भी हुए । अकबर, जहाँगीर आदि³ का समय मध्यकालीन इतिहास में बहुत अच्छा समझा जाता है । अनल-प्रकाश के रचनाकारों के शब्दों में :

“मुस्लिम आक्रान्ता भी कोई लूट-खसोट भगे,
पर जो रहे यहीं के बनकर, उनके भाग्य जगे ।
बने देश के स्वामी तक वे शासक हुए महान,
यह प्रभु की प्रिय भूमि जहाँ से फैला वैदिक ज्ञान ।”

अनल-प्रकाश, क्रान्ति-रेखण 13 ।

3. “अमन और खुशहाली के लिहाज से मुगल साम्राज्य का समय भारतीय इतिहास में निरमन्देह स्वर्ण युग था । असंख्य योरोपीय और एशियायी शक्तियों की गवाहियाँ और उस समय के ऐतिहासिक उल्लेख इस विषय में गकल किए जा सकते हैं । धन-धान्य और सुख-सम्पत्ति की जो रेल-गेल भारत के अन्दर शाहजहाँ के शासन-काल में देखने में आती थी वह संसार के इतिहास में शायद ही कभी किसी दूसरे देश को नसीब हुई हो ।”

भारत में अंगरेजी राज, पहिली जिल्द, पृष्ठ 183 : सुन्दरलाल ।

और,

“अकबर-जहांगीरादि ऐसा श्रेष्ठ शासन ला सके,
हिन्दू-मुसल्मां नेत्र दोनों बन गए जब शाह के।
वह युग कि जिसमें गुप्त-युग भी भूल बैठे लोग थे,
सुख, शान्ति और समृद्धि का सब कर रहे उपभोग थे।”

अनल-प्रकाश, क्रान्ति-रेखण 20।

इस प्रकार भारत में उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक, शासक चाहे एक रहा हो, चाहे अनेक रहे हों, सब भारत को ही अपनी मातृ-भूमि मानते थे, सारे भारत को वे एक देश, एक राष्ट्र ही समझते रहे।

भारत प्राचीन काल से ही एक भौगोलिक इकाई रहा है। इतिहास के विद्वान श्री के० एम० पणिकर के अनुसार, “भारत की आबादी के विभिन्न तत्वों में से एक सभ्यता और सामाजिक ढांचे का निर्माण कर उसे सारे देश में स्थापित करना प्राचीन हिन्दुओं की महान सफलता थी”। भावनात्मक एकता के लिए अर्थात् जिससे भारत के प्रत्येक भाग में रहने वाला यह अनुभव करे कि सारा देश उसका अपना ही देश है, हमारे पूर्वजों ने देश में सभी जगह फैली नदी, पहाड़, वन आदि, मानव-जीवन पवित्र करने और सफल करने के साधन माने हैं। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित नदियों में स्नान करना उन्होंने पुण्य का कार्य माना है :

‘गंगे च यमुने चैव, गोदावरि, सरस्वति,
नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु।”

इसी प्रकार कोई भी शुभ-धर्म-कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिए मैसूर में होनेवाले चन्दन, समुद्र-तट पर होनेवाले नारियल और कश्मीर में होनेवाली केसर का प्रयोग आवश्यक माना जाता है। सारे देश में अपनेपन की भावना बनाए रखने के लिए ही उत्तर से गंगाजल ले जाकर धुर दक्षिण में स्थित रामेश्वरम् में चढ़ाने का⁴ विशेष धार्मिक

4. “जे रामेश्वर दरसन, करिहहि। ते तनु तजि सम लोक सिधरिहहि॥
जे गंगा-जलु आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥”

रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, 2, 1 : तुलसीदास।

महत्त्व घोषित किया गया है। इस प्रकार भारत में निस्सन्देह गहरी आधारभूत एकता है जो भौगोलिक एकता अथवा राजनीतिक सत्ता द्वारा स्थापित एकता से अधिक गहरी है और रक्त, रंग, भाषा, परिधान, रहन-सहन के तरीकों और वर्ग की असंख्य विभिन्नताओं में से होकर ऊपर आई है। वास्तव में यदि ध्यान से देखा जाए तो वेदों की राष्ट्रीय भावना जो 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' (ऋग्वेद के वाक् सूत्र में वाणी अथवा भारती कहती है कि मैं राष्ट्र हूं और वसुओं के साथ चलती हूं) आदि ऋचाओं में गूंजती है, बाद में भी कभी मरने नहीं पाई। अनल-प्रकाश में भी यह राष्ट्र-एकात्मता जगह-जगह उभारकर ऊपर लाई गई है। उसमें वर्णित कुछेक घटनाएं उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं।

1 अरावली पर्वत पर यज्ञ के लिए एकत्र देश भर के ऋषियों, मनीषियों और वीरों के सामने धुन्धकेतु और धूमकेतु नामक राक्षसों से देश की रक्षा करने की चुनौती सामने आई तो अनलराव, वीरवर, दुर्जनांकुश और कुंचलदेव नामक चार वीरों ने मिलकर राक्षसों का आतंक मिटाया और फिर वापस क्रमशः मांडवार, उज्जैन, गुजरात और आबू पर्वत पर जाकर अपने-अपने वंश चलाए। (अनल-प्रकाश, अनल-उद्भव)

2. मद्र देश के राजा माद्र ने अपनी कन्या माद्री हस्तिनापुर के राजा पाण्डु को व्याही और दो सुदूरवर्ती राज्यों की एकता सुदृढ़ की। माद्र के पुत्र शल्य ने कुरुक्षेत्र जाकर महाभारत में भाग लिया। (अनल-प्रकाश, चौहान-चन्द्रिका)

3. अजयराव ने राष्ट्र की रक्षा पर विचार करने के लिए खीची- (खिचड़ी-) यज्ञ नाम से देश के सभी राजाओं का एक महासम्मेलन आयोजित किया जो एक मास पर्यन्त चला। वर्तमान जिला राजगढ़ (मध्य प्रदेश) में वह स्थान खीचीपुर (या खिलचीपुर) कहलाया। (अनल-प्रकाश, खीची-यज्ञ)

4. दूलाराव सिन्ध के राजा दाहिर का पक्ष लेकर विदेशी आक्रान्ता मुहम्मद-बिन-कासिम से युद्ध करने राष्ट्र की सीमा पर पहुंचे और आक्रमणकारियों के प्रयास विफल करके उन्होंने वीर-गति प्राप्त की। (अनल-प्रकाश, प्रबल-प्रतिरोध)

5. बलात् धर्म-परिवर्तन रोकने के लिए पीपाजी ने सन्त रामानन्द और उनके शिष्यों को लेकर वाराणसी से द्वारका तक की यात्रा करते हुए सद्धर्म-दुन्दुभी बजाई । (अनल-प्रकाश, मार्गान्वेषण और महाभिनिष्क्रमण)

6. अचल सिंह ने पश्चिम में मेवाड़ के और पूर्व में रीवा के राजाओं से सम्बन्ध करके दो सुदूरस्थ क्षेत्रों में एकता स्थापित की और अन्यायी शासकों का आतंक मिटाया । (अनल-प्रकाश, शक्ति-संचयन)

7. गजसिंह ने खिलचीपुर से बहुत दूर प्रयाग और अरगल तक अपना प्रभाव स्थापित किया और अरगल के गौतमों से सम्बन्ध करके जिला फतेहपुर में अइझी राज्य स्थापित किया, जो बाद में असोथर-गाजीपुर का आदर्श राज्य बना । (अनल-प्रकाश, खीचीवर-परिचय और पाणि-ग्रहण)

8. भगवन्तराय ने बुन्देलखण्ड के छत्रसाल से मित्रता करके दिल्ली तक अपना प्रभाव फैलाया और अन्तरवेद से आततायियों का नाश करने के लिए 48 युद्ध जीते । (अनल-प्रकाश, भगवन्त-आल्हा)

9. असोथर-नरेश दुनियापति ने अंग्रेजों से लोहा लिया, और स्वतन्त्रता की पहिली लड़ाई की पृष्ठ-भूमि तैयार की । उन्होंने अंग्रेजों के कपट-जाल का सामना करने के लिए अपने सैनिकों को देश-व्यापी प्रचार करने के निमित्त साधुओं के वेश में भेजा जो प्रकट रूप से अंग्रेजी राज को प्रशंसा करते थे, किन्तु गुप्त रूप से अंग्रेजी सेनाओं के भारतीय सैनिकों को क्रान्ति के लिए तैयार करते और तदनुसार जनता को भी शिक्षित करते थे । राज-गुरु सभी देशी राजाओं से, दक्षिण में मराठों और हैदर अली, टीपू सुलतान तक से सम्पर्क बनाए रखते थे । (अनल-प्रकाश, क्रान्ति-रेखण)

10. यह भी उल्लेखनीय है कि अनल-वंशी राजा अपना देशव्यापी प्रभाव किसी राजनीतिक वरिष्ठता के आधार पर नहीं, बल्कि बराबरी की मित्रता के आधार पर बनाए रखते थे । (अनल-प्रकाश, महाप्रयाण, 58)

2. इतिहास और साहित्य

कथा, सत्यकथा, कहानी, गल्प और उपन्यास के इस युग में महाकाव्यों की समीक्षा बहुधा इसी प्रश्न से आरंभ होती है कि इसके पात्र वास्तविक हैं या काल्पनिक, इसमें वर्णित घटनाएं सच्ची हैं या मनगढ़न्त। कथ्य और तथ्य के बीच खाई पाटने के उत्साह में लोग जिया हुआ जीवन बताने पर ही तुल जाते हैं ताकि उनका कथ्य या साहित्य उनके समाज का दर्पण बन जाए। ऐसे लोग कालान्तर में ऐसे चरित्रों पर भी अविश्वास करने लगते हैं जो उन्हें अपने आस-पास नहीं दिखते। शायद इसीलिए रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य भी अब मिथकों के ढेर में रखे जा रहे हैं। किन्तु हमारा (और प्रस्तुत कृति के कृतिकारों का भी) यह दृढ़ विश्वास है कि महाकाव्यों के नायक बनने योग्य चरित्र आर्यावर्त में सदा ही रहे हैं, और उनको प्रकाश में लाने के लिए अच्छे इतिहासकारों की प्रतीक्षा रही है। तभी तो 'कभी कहीं इतिहासकार ऐसा जनमेगा...⁵' से कृतिकारों ने इस कृति का श्रीगणेश किया है। इसलिए साहित्य के सन्दर्भ में इतिहास का विवेचन करना सर्वप्रथम आवश्यक प्रतीत होता है।

2.2 युद्ध, शान्ति और इतिहास

संसार का केवल चार-पांच-हजार साल का ही इतिहास हमें मालूम है। इनमें से कोई दो-चार-सौ साल ही ऐसे होंगे जिनमें कहीं कोई युद्ध नहीं हुआ। आज-कल का युद्ध किसी प्रतियोगिता का अन्तिम चरण ही माना जा सकता है। इसे स्वाभाविक चुनाव भी कह सकते हैं। सभ्यता का जो विकास सदियों में होता है, उसे नष्ट कर देने के लिए अब तो केवल एक ही युद्ध काफी है। हां, युद्ध से विज्ञान और उद्योग-विद्या को अवश्य प्रोत्साहन मिलता है : इनके घातक अन्वेषणों का प्रयोग बाद में शान्ति-कालीन सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। बस

प्रत्येक युग का इतिहास युद्धों से भरा है। हजार-हजार, लाख-लाख सैनिकों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी होती हैं। उनमें मरने-मारने का नशा भरा जाता है। उनका विवेक नष्ट करने के सभी उपाय किए जाते हैं। बस, हुकम मिला और दनादन गोलियां चलने लगीं; किनपर, पता नहीं; किसकी गोली किसको लगी, पता नहीं; और देखते ही देखते लाखों-करोड़ों हंसते-बोलते चेहरे खून-मांस की कीच में डूबने-उतराने लगे। कैसी मूर्खता है ! क्या उन सैनिकों में कभी शत्रुता थी ? कभी नहीं। वे बेचारे तो कुछ महत्वाकांक्षियों की बिसात के मोहरे बने और पिट गए, और वे महत्वाकांक्षी पीछे खड़े देखते रहे⁶। यदि वे सैनिक युद्ध-भूमि में न पहुंचते तो शायद कभी आपस में मिलते-जुलते, उद्योग-व्यापार, कला-संस्कृति की बातें करते, एक दूसरे की उन्नति का साधन बनते। किन्तु बाहर रे पागलपन ! आपस में जूझे जा रहे हैं। आजकल युद्ध का स्वरूप बहुत बदल गया है; किन्तु सत्य नहीं बदला। शराब वही है, केवल बोतल बदली है।

युग-युग से सेनापति और शासक शान्तिवादियों की हंसी उड़ाते रहे हैं। सैनिक की भाषा में इतिहास का अर्थ लगाया जाए तो युद्ध ही निर्णायक है; और कायर तथा मूर्ख छोड़कर सभी इसकी आवश्यकता समझते हैं। यह सही है कि युद्ध में बहुत से युवक मर जाते हैं, करोड़ों पर तबाही आती है। इसपर सेनापति को भी तरस आता है। सम्राट् अशोक का बौद्ध मत ग्रहण करना इसका प्रमाण है। किन्तु क्या इतने अधिक लोग तरह-तरह की दुर्घटनाओं में नहीं मरते हैं ? बहुत से लोग आपस में ही झगड़ा करते हैं। उनकी अपनी साहसिकता के प्रदर्शन का मार्ग भी तो मिलना चाहिए। यह सोचने की बात है कि हमारी कला और संस्कृति की जो विरासत हमें मिली है, उसकी क्या दशा होती, अगर विदेशियों के आक्रमणों के समय हथियार उठाकर इनकी रक्षा न की गई होती ? फिर जब देर-सबेर उन्हें मरना ही है, तो अपने देश के लिए ही शान से क्यों न मरें ?

6. देखिए अनल-प्रकाश, धारु-विजय, 24।

7. देखिए अनल-प्रकाश, धर्म-संकट, 41।

यह भी सच है कि यदि किसी राष्ट्र में बहुत समय तक शान्ति रहती है तो युद्धों में काम आने वाले उसके अंग बुरी तरह कमजोर पड़ जाते हैं। अभी अन्तरराष्ट्रीय कानून ऐसे प्रबल नहीं हैं कि युद्ध रोके जा सकें। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा स्वयं ही करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि जब अपनी सुरक्षा पर ही आंच आ रही हो तब दया-धर्म, रीति-निति सब ताक पर रखनी पड़ती हैं। इसलिए इतिहास के निर्माण में युद्धों की प्रमुख भूमिका रही है। किन्तु उन लोगों का समर्थन कौन करेगा, जो उजाले में भी अंधेरा ही देखते हैं, जो केवल अपनी युद्ध की प्यास बुझाने के लिए ही दूसरों को उकसाते हैं, स्वयं भी साथ देते हैं, उलटे-सीधे तर्क पेश करते हैं, भय का भूत दिखाते हैं, रस्सी को साँप बताते हैं ? इस प्रकार वे अपना स्वार्थ साध लेते हैं और युद्ध की आवश्यकता सिद्ध कर देते हैं। फिर एक बार आवश्यकता सिद्ध हो गई तो आगे क्या है ? तब तो शत्रु की भूमि पर ही युद्ध-क्षेत्र बनाना बुद्धिमानी होगी। यदि शत्रु के देश में अपने कुछ सैनिक मर गए, किन्तु वहाँ के कुछ करोड़ असैनिक तबाह हो गए, तो क्या हर्ज है ? अपना देश तो बचा रहेगा। अपने लोग तो स्वतंत्रतापूर्वक अपना सामान्य जीवन बिताते रहेंगे। यही दूरदर्शिता की नीति है जो इतिहास की शिक्षाओं के अनुकूल है। किन्तु है आखिर खतरनाक ही, क्योंकि शत्रु भी तो सेर का सवा सेर निकल सकता है। अभी पिछले दशकों में चीन और पाकिस्तान ने भारत के साथ क्या किया था ? दोनों ने भारत की सीमा में घुसकर युद्ध छेड़े। यह बात दूसरी है कि विपक्षी की शक्ति अनुमानने में दोनों ने मूर्खतापूर्ण ग़लती की थी। जिसे उन्होंने भोला चीतल समझकर अपने दुर्भाग्यपूर्ण वछे का निशाना बनाया वह उनकी सब गत बना देने वाला खूँखवार चीता निकला।

इतिहास में सदा से यही होता आया है। एक ने दूसरे पर आक्रमण किया दूसरे ने अपनी रक्षा का प्रयास किया और जीत गया तो शत्रु को मार भगाया, हार गया तो दासता की तोक गले बांधी। हाँ इतना अवश्य है कि अब ऐसा करने से विनाश-लीला बहुत बढ़ जाएगी। वह उसी अनुपात में बढ़ेगी, जिस अनुपात में हमारे आधुनिक हथियारों की विनाशकता बढ़ी है। किन्तु हम इतिहास के बाहर जाएँ भी, तो कहाँ ?

और इतिहास के सारे पाठ भुला देने से क्या लाभ ? इसलिए हमारे साहित्यकार भी इन्हीं घटनाओं के बीच साहित्य के तत्व खोज-खोजकर प्रस्तुत करते रहते हैं ।

2.3 पाप, पुण्य और इतिहास

युद्ध के बाद, मानव जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाली है नैतिकता । इसलिए साहित्यकार नैतिकता की दृष्टि से अपने पात्रों का चरित्र आँकते हुए उन्हें अपनी रचना में उपयुक्त स्थान देता है ।

नैतिकता के नियम समय-समय पर, और देश-देश में बदलते रहते हैं । कभी-कभी ये परस्पर विरोधी भी होते हैं । इसलिए मोटे तौर पर देखा जाए तो उनका कोई महत्व नहीं होता, किन्तु गम्भीरता से विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नियम सभी देशों में और सभी कालों में प्रायः समान रूप से लागू रहे हैं — परिस्थिति के अनुसार काल-क्रम से कहीं पहिले और कहीं बाद में । जैसे-जैसे ऐतिहासिक परिस्थितियाँ बदलती रही हैं, ये नियम उनके अनुकूल ढलते रहे हैं । जैसे आदिकाल में मनुष्य अधिकतर शिकार से ही गुजर करता था । तब उसको हर समय भागने-दौड़ने की आवश्यकता होती थी । शिकार का पीछा करने और मरने-मारने के लिए सदा तैयार रहना पड़ता था । यदि मान लें कि मनुष्य आदि काल से ही शाकाहारी था, तो भी उसे भोजन के लिए फल-मूल और पहिनने के लिए वल्कल-पत्र आदि वन्य पदार्थ वनों से प्राप्त करने पड़ते थे, जहाँ जंगली जानवरों का सामना करना पड़ता था । इस प्रकार हर हालत में उसकी जान का खतरा अधिक था । शायद इसी कारण स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की मृत्यु अधिक होती थी । फलस्वरूप कुछ लोग कई-कई पत्नियाँ तक रख सकते थे । इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियाँ भी कभी एकाधिक पति वरण करती रही होंगी । जीवन-संघर्ष और वंश चलाने के लिए किसी हद तक पशुता, लास्य और कामुकता आवश्यक थीं । अतः पहिले तो इनमें कोई बुराई न समझी जाती थी; किन्तु जब भी परिस्थितियाँ बदली, और इनके बिना काम चलना संभव न होया, इन्हें छोड़ने की आवश्यकता भी समझी जाने लगी । यही ज्ञान का प्रकाश, सभ्यता की प्रगति और मानव की उन्नति या नीचता अमरत्व से

देवत्व की ओर (असत् से सत् की ओर, तम से ज्योति की ओर⁸) मानव की यात्रा कहलाई। इस यात्रा में आगे रहने वालों ने अपने को आर्य (श्रेष्ठ) और पीछे रह जाने वालों को अनाय (निकृष्ट या म्लेच्छ) कहना आरम्भ कर दिया।

इसी प्रकार शायद अन्य प्रवृत्तियाँ भी किसी परिस्थिति में पाप और किसी में पुण्य थीं। अर्थात् वह बुराई नहीं, परिवार के या समाज के जीवित रहने के लिए आवश्यक गुण था। यानी आज हम जो-जो कुछ पाप के रूप में देखते हैं, वे सब शायद मनुष्य के उन्नति-पथ के अवशेष हैं; उनके जीवन-संघर्ष की स्मृतियाँ हैं; उसकी अवनति के लक्षण नहीं। जो परिवर्तन 'पुण्यात्माओं' में आ चुका है, वह शायद पापियों में कुछ देर से आएगा, उचित अवसर मिलने पर आएगा। इसीलिए सन्तों ने कहा है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। सन्त तो स्वयं को ही पापी बताते हैं - 'बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न दीखा कोय; जो दिल खोज्या अपना, मुझसा बुरा न कोय।' वे अपने प्रभु से अपना उच्चार करने की विनती ही करते रहते हैं - 'प्रभु मोरे औगुन चित न धरो'; आदि। इस प्रकार वे आदर्श रखते हैं कि समाज सबको सहन करता रहे - 'जीओ और जीने दो'। दूसरे शब्दों में पापी करुणा के पात्र होते हैं, न कि दण्ड के। यानी उन्हें शुद्ध करके, आर्य बनाकर आर्यत्व सिखाकर अपना लेना चाहिए। उसके बाद भी मनुष्य का फिसलना आसान होता है। यह अपने पुराने अवशेषों और स्मृति-चिह्नों के प्रति उसका लगाव ही है, न कि 'पाप' के प्रति आकर्षण। लगाव प्रयास करने से ही छूटता है। इसलिए धर्मच्युत लोगों का भी शुद्धीकरण ही अपेक्षित है, न कि तिरस्कार⁹।

१. असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मांमुक्तं गमय।

बृहदारण्यक उपनिषद्।

और भी :

हों अग्रसर सत् पर असत् से, ज्योति में तम से, प्रभो।

मर्त्यत्व से अमरत्व की ही ओर ले चलिए, प्रभो।

गुप्त-बन्धु : पिता की खोज, पृष्ठ 32।

१. देखिए अनल-प्रकाश, मार्गान्वेषण, 11, 12; और

वही, महाभिनिष्क्रमण 20।

साहित्यकार अपने हृदय में करुणा का सागर समेटे यही सब देखता रहता है ।

एक संसारी प्राणी के रूप में मनुष्य की दशा बड़ी दयनीय है । क्या पाप है, क्या पुण्य है, क्या धर्म है, क्या अधर्म है, इसका निर्णय सरल नहीं होता—‘किं कर्म किं अकर्मैति, कवयोऽप्यत्र मोहितः’ (श्रीमद्भगवद्गीता, 4/16) । फिर भी इतिहास से हमें कुछ सान्त्वना अवश्य मिलती है । इतिहास बताता है कि पाप सभी युगों में फूला-फला है, चाहे रहा हो अल्पजीवी ही । फिर हमारे जमाने की अनैतिकता का स्वरूप चाहे कुछ बदला हो, उसकी मात्रा नहीं बदली । स्त्री-पुरुष प्रत्येक युग में जुआ खेलते थे, प्रत्येक युग में बईमानी चलती थी, प्रत्येक युग में शराब पी जाती थी, मांस खाया जाता था । यानी जहां आर्य थे, वहां अनार्य भी कुछ कम नहीं रहते रहे हैं । स्थान-स्थान में इनका अनुपात बेशक कम-ज्यादा होता रहा है । इनके बीच संघर्ष भी होता रहा है, आर्य ‘कृण्वन्तो विश्वमार्यम्’¹⁰ की उदात्त भावना से, और अनार्य अपने स्वभाव के बश होकर लड़ते रहे हैं । अपना-अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए दोनों ही संघर्ष को अनिवार्य समझते थे । इसी प्रकार शासन-व्यवस्था, यानी सरकारों में भी सदा भ्रष्टाचार रहा है—कहीं कम, कहीं ज्यादा । फिर भी इतिहास में अच्छाइयों के इतने अधिक उल्लेख हैं कि पाप क्षमा किए जा सकते हैं । हाँ, उन्हें भुलाना उचित न होगा । शायद इसीलिए साहित्यकार भी उन्हें लिपिबद्ध कर देता है । उसकी नजर से देखें तो इतिहास में उदारता के वृत्तान्त भी प्रायः उतने ही होंगे, जितने युद्धों और कारागार की यातनाओं के । हम किसी भी जमाने के लिए यह नहीं कह सकते कि उसमें अच्छाइयाँ अधिक थीं/हैं, या बुराइयाँ । और यह तो निश्चित रूप से कहा ही नहीं जा सकता कि आज-कल की नैतिक शिथिलता किसी बुरे भविष्य

10. इन्द्रं वदन्तो अप्तुरः । कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अरावणः ।

ऋग्वेद 9/63/5 ।

अर्थात् विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाते हुए, जीवात्मा को बढ़ाते हुए, त्वरासहित कर्म-साधना सम्पन्न करते हुए और कृपणताओं को दूर भगाते हुए हमें इस संसार में विचरना-व्यापना है ।

का पूर्वाभास है। सम्भव है, यही वह संक्रान्ति-काल हो जब पुराने जमाने के नैतिक नियम इसलिए शिथिल हो रहे हों कि भावी नियमों के लिए स्थान खाली हो जाए।

2.4 साहित्यकार बनाम इतिहासकार

इतिहास के अध्येताओं के भी अपने-अपने दृष्टि-कोण होते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि हम प्रज्ञा-चक्षुओं की भांति किसी वस्तु को टटोल-टटोलकर उसका दर्शन करते हैं और तदनुसार निर्णय सबपर थोप देते हैं। वाल्टेयर ने लिखा है कि 'इतिहास मुख्यतया मनुष्य के अपराधों, मूर्खताओं और दुर्भाग्यों का संकलन है'। गिब्सन का भी यही विचार था। किन्तु क्या यही युग-धर्म था? यह सच है कि युद्ध और राजनीति, तलाक और बलात्कार, हत्या और आत्म-हत्या आदि के चारों ओर ही इतिहास घूमता रहता है। किन्तु इनके काले घेरे के बाहर भी तो कुछ था। करोड़ों सुखी परिवार थे, निष्ठापूर्ण दम्पति थे; और परस्पर प्रेम से रहनेवाले स्त्री-पुरुष और बच्चे-बूढ़े भी तो इसी धरती पर थे। उनकी संख्याओं के अनुरूप इतिहास के पृष्ठों में भी उन्हें जगह मिली होती, तभी हमें भूत-काल और मानव का सही चित्र देखने को मिलता। किन्तु हमारे लिखित इतिहास में यह नहीं हुआ। इतिहास के पृष्ठों पर उनके लिखने वाले और लिखाने वाले, दोनों की अपनी ही तूती अधिकतर बोलती रही है¹¹। निष्पक्ष कोई भी नहीं रह सके। शायद उनका उद्देश्य भी यही था। मिस मेयो की पुस्तक 'मदर इण्डिया' पर महात्मा गांधी की टिप्पणी थी कि यह तो किसी घूर-साहब की रिपोर्ट है (It is nothing but a drain-inspector's report)। बहुत से यूरोपीय विद्वानों के भारत-सम्बन्धी साहित्य के लिए भी बहुत-कुछ यही कहा जा सकता है।

सच्चा इतिहास तो वही कहा जा सकता है जो मानव-जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करे। संस्कृतियों का उत्थान-पतन, राष्ट्रों का बनना-विगड़ना, मानव की दुर्बलता-सबलता, सब हमें सही पृष्ठ-भूमि पर मिल सकनी चाहिए। ऐसी सामग्री कोई निष्पक्ष इतिहासकार ही हमें दे सकता है, और उसी से हम यह निर्णय कर सकते हैं कि हम आगे बढ़ रहे हैं या

पीछे जा रहे हैं। यदि हमारी प्रगति वास्तविक है तो वह इसलिए नहीं कि हम पुराने जमाने के बच्चों की अपेक्षा अधिक या कम स्वस्थ, दीर्घ-जीवी या बुद्धिमान हैं, बल्कि इसलिए कि हमें समृद्ध विरासत मिली है। इस विरासत का लेखा-जोखा ही इतिहास है। इस विरासत को ही समृद्ध करना, इसकी रक्षा करना, इसका उपयोग करना और फिर अगली पीढ़ी को सौंपना ही प्रगति है।

कुछ लोग इतिहास का अध्ययन इस दृष्टि से करते हैं कि वे उन मूर्खताओं और अपराधों से बचें जो पहिले के लोग कर चुके हैं। उनके लिए सारा भूतकाल भयानक और भूलों-भरा ही था किन्तु कुछ लोगों का उद्देश्य इसके अतिरिक्त कुछ और भी होता है। वे संसार में उन महा-पुरुषों को ढूँढ़ते हैं, जिन्होंने संसार को कुछ दिया है; जिनके पद-चिह्न समय के मरुस्थल पर आज भी मार्ग-दर्शन कर रहे हैं; जो संकटों से भरे हुए इस संसार-सागर में प्रकाश-स्तम्भ बन चुके हैं जिन्हें देखकर अपनी टूटी-फूटी नौका खेने वाले युवक कुछ साहस धारण कर सकें; जिनकी महान् आत्माओं की स्मृति से उन्हें जीवन की प्रेरणा मिल सके। इतिहास के ऐसे खोजियों को भूतकाल विकराल नहीं दिखता, वह भयानक कमरा सा नहीं लगता। उनके लिए तो वह एक सुन्दर चित्रशाला, या दिव्य नगरी या एक विशाल देश ही हो जाता है जहां उनको हजारों सन्त, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, कवि, कलाकार, संगीतकार और दार्शनिक मिलते हैं, जो उनके लिए अब भी वहाँ वर्तमान हैं उनसे बोलते हैं, उन्हें शिक्षा देते हैं, उन्हें अपनी कला-कृतियाँ दिखाते या संगीत सुनाते हैं। उन खोजियों की दृष्टि पर-छिद्रान्वेषी नहीं होती, अतः उन्हें प्राचीनकाल सतयुग या कृतयुग (किंवा त्रेता अथवा द्वापर) वर्तमान काल (कलयुग) से श्रेष्ठ ही दीखता है। जो इतिहास ऐसे शोधार्थियों के लिए अध्ययन की सामग्री दे सके, वह वास्तव में साहित्य ही है। उसे लिखने वाला साहित्यकार ही होगा।

इतिहासकार मनुष्य के अस्तित्व का केवल वही अर्थ निकाल पाता है, जो मनुष्य ने उसे दिया है। इसके अलावा वह कुछ नहीं समझ पाता। अपनी इस असमर्थता के लिए उसे खेद भी नहीं होता। किन्तु साहित्यकार के बारे में ऐसी बात नहीं है। वह तो लिखता ही मानव-हित के लिए है।

साहित्य वही है जिससे मनुष्य का हित-साधन हो¹²; और किसी लेखक के लिए तो यह गर्व का विषय होगा कि वह जीवन का अर्थ समझे और ऐसे उद्देश्य सामने रखे जो मृत्यु को भी जीत लें और उसकी रचना इसमें सहायक हो¹³। इसीलिए हमारे ऋषियों और सन्तों ने इतिहास के नाम पर साहित्य ही प्रस्तुत किया है, भले ही आज के शंकाशील अध्येता उन्हें अविश्वसनीय कहकर मिथक या गल्प ही समझ लें। प्रस्तुत रचना 'अनल-प्रकाश' को इसी दृष्टि-कोण से देखना चाहिए।

2.5 साहित्य इतिहास का निचोड़ है

साहित्य के तत्त्व संसार में बिखरे पड़े होते हैं, जिस तरह फूल जगह-जगह फूलते हैं, फल बनते हैं, बिखरते हैं, फिर उपजते हैं; किन्तु उन फूलों का सुन्दर गुलदस्ता या माला बनाने के लिए मालाकार की अपेक्षा होती है। वह अच्छे-अच्छे फूल चुनकर उन्हें कायदे से सजाता-सँवारता, बीधता-सूथता है, तब कहीं गुलदस्ता या हार बनता है और प्रस्तुत करने योग्य होता है, देवताओं पर चढ़ता है, मौलि-मण्डन करता है, और अलंकार बनकर रसज्ञों की प्रशंसा अर्जित करता है। बस, इसी प्रकार इतिहास में बिखरे हुए साहित्य के तत्वों को चुन-चुनकर उन्हें साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए भी किसी कुशल साहित्यकार की अपेक्षा होती है।

हमारी (और कृतिकारों की भी¹⁴) यह मान्यता है कि साहित्य के तत्व प्रायः मनुष्य के वे कार्य होते हैं जो स्वयं आकर्षक हों, जिनमें व्यापक लोक-रुचि हो, और जो कुशल कृतिकार की कला द्वारा रोचक ढंग से व्यक्त किए जाएं। कृतिकार अपनी कृति के लिए ऐसी घटनाएं चुनता है जिनमें मानव-हृदय को आन्दोलित करने वाले गुण मौजूद हों, और उसकी कुशलता द्वारा और भी उभारे जा सकें। यानी विशेष गुणों वाली घटनाएं, और कृतिकार की कुशलता, दोनों ही अच्छे साहित्य के प्रणयन

12. कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहें हित होई ॥

रामचरितमानस, बालकाण्ड, 14/5 : तुलसीदास ।

13. देखिए अनल-प्रकाश, महाभिनिष्क्रमण 1 ।

14. देखिए पिता की खोज, भूमिका, पृष्ठ 12, 14 : गुप्त-बन्धु ।

के लिए आवश्यक हैं। यदि कोई कृतिकार दम्भ पालते हुए ऐसा कहे कि वह किसी निकृष्ट घटना को अपने रचना-कोशल से उत्कृष्टता का जामा पहिना सकता है, तो वह भ्रम में है। उसकी रचना में उसके कोशल की तो सराहना की जा सकेगी, किन्तु फिर भी कुछ ऐसी कमी रहेगी, जो बराबर खटकती रहेगी, और रचना पाठक के मन को छू पाने में समर्थ न हो सकेगी¹⁵। दूसरे शब्दों में वह रचना सत्साहित्य का उदाहरण नहीं बन सकती। किन्तु यदि किसी घटना में ही वे गुण पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं, तो रचना-कोशल के अभाव में भी उसके वर्णन से अच्छे साहित्य की सृष्टि हो सकेगी। किसी इतिहास में ऐसी घटनाएं भी मिल ही जाती हैं, बशर्ते कि उन्हें खोज निकालने वाला कोई हो। यही हमारे इतिहास का निचोड़ है जिसने हमारे कृतिकारों को प्रभावित किया है। दूसरे शब्दों में इतिहास के उन्नायक तत्त्व ही साहित्य का आधार बनते हैं।

2.6 साहित्य और संस्कृति

संसार में बहुत सी सभ्यताएं समय-समय पर जनमों और फूली-फलीं। कुछ अब तक चली आ रही हैं, कुछ का अब केवल नाम ही शेष रह गया है। ऐसा उत्थान-पतन इतिहास में होता ही रहता है। जब किसी सभ्यता का पतन होता है, तब उसके अनुयायियों का रहस्यपूर्ण लोप नहीं हो जाता। होता यह है कि देश-काल के अनुसार सभ्यता में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता हुआ करती है। जब कोई जाति परिवर्तन की यह मांग पूरी नहीं कर पाती तब उसकी सभ्यता का पतन आरम्भ हो जाता है, किन्तु कोई सभ्यता वास्तव में मरती नहीं है।

संस्कृति अमूर्त होती है। सभ्यता उसकी मूर्त अभिव्यक्ति का प्रयास है। भारत में वैदिक सभ्यता आज भी उसी प्रकार फूल-फल रही है, जैसी हजारों साल पहिले थी। कारण यह है कि यह अपने को देश-काल के अनुरूप ढाल लेती रही है। या यों कहिए कि मनीषियों में इतनी जागरूकता रही है कि वे समयानुसार उचित व्यवस्था देते रहे हैं। द्रविड़ पूजा आदि के रूप में उसकी छाप देखी जा सकती है। बौद्ध सभ्यता के

15. देखिए रामचरितमानस, बालकाण्ड, 11/4 : तुलसीदास।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥

प्रवर्तक गौतम बुद्ध को हिन्दुओं ने एक अवतार ही मानकर आत्मसात् कर लिया है। सभ्यताएं कोई तलवारें तो हैं नहीं कि एक म्यान में दो नहीं रह सकतीं। उनमें कुछ टकराव होता सही है, जैसे दो नदियों में। किन्तु उनका संगम होता है, और दोनों साथ-साथ चलती हैं। एक ही व्यक्ति या जाति में दोनों रहती हैं, किन्तु नाम एक का होता है, जैसे दो नदियों के संगम के बाद एक ही नदी का नाम चलता है।

बहुत से यूनानी, शक, पहलव भारत में आकर यहीं के हो रहे (शक जाति के सुप्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क ने कुशान साम्राज्य स्थापित किया और बौद्ध मत स्वीकार किया)। आर्यों के संसर्ग में आकर वे अनार्य (यवन, म्लेच्छ, विदेशी आर्येतर) लोग भी आर्य या भारतीय बन गए¹⁶। किन्तु इस प्रकार मिलने में समय लगता है। मुसलमान बाद में आए तो हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियां भी मिलने की कोशिश करती रही हैं, कभी मिली भी हैं, जैसे अकबर के 'दीने इलाही' नाम से; किन्तु कुछ परिस्थितियां बीच-बीच में आती रहीं, जैसे मुसलमानों के बाद आने वाले यूरोपीयों/अंग्रेजों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए अलगाव बनाए रखना आवश्यक समझा। यह अलगाव मिटाने के जो प्रयास आज हो रहे हैं, उनकी सफलता के बाद जब कभी वे घुल-मिलकर आर्यों से अभिन्न हो जाएंगे तब भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि मुस्लिम संस्कृति लुप्त हो गई है, क्योंकि उसकी अच्छाइयां तब भी आर्यों द्वारा समादृत होकर बनी ही रहेंगी। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि धर्म, विधर्मी, आर्य संस्कृति, म्लेच्छ, यवन आदि शब्द किसी मत, सम्प्रदाय या वर्ग विशेष से बँधे हुए नहीं हैं, बल्कि व्यापक अर्थ में किसी विशेष जीवन-दृष्टि या धारणा से जुड़े हुए हैं, जैसी कृतिकारों की मान्यता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है।

यह एक महत्वपूर्ण सच्चाई है कि कोई संस्कृति वास्तव में मरती नहीं है। उदाहरणार्थ यूनानी संस्कृति आज तक लुप्त नहीं हुई है। वह एक नहीं, कई जातियों की स्मृति में जीवित है, पुस्तकालयों में जीवित है। आज भी वह इतनी जीवन्त है कि कोई अपने सारे जीवन में उसे पूरा नहीं उतार सकता। होमर की कृतियां उसके ज़माने में जितनी पढ़ी-गुनी

जाती थीं, आज उससे कहीं अधिक व्यापक हैं। सभी संस्कृतिबोधों की बहुत-कुछ यही बात है। बाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, दोसपीयर, दान्ते आदि प्रत्येक पुस्तकालय और कालेज में विद्यमान हैं। संसार में सभी जगह उनका अध्ययन करने वाले मस्त हो-होकर उन्हें पढ़ते हैं, और उनकी संस्कृति अपने मन-मस्तिष्क में जीवित रखते हैं। चुने हुए महापुरुष इस भांति जीवित रहें तो यही सच्ची और उपयोगी अमरता है।

संस्कृति तो जीवन-मूल्यों की मंजूषा होती है, उन जीवन-मूल्यों की, जिनसे समाज जीवनी शक्ति प्राप्त करता है, और जिनके लिए मनुष्य सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहता है। ऐसे जीवन-मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सौंपे जाते रहते हैं। यदि ये जीवन-मूल्य अगली पीढ़ी तक नहीं पहुँच पाते तो केवल शोध-कर्त्ताओं के लिए कौतूहल की वस्तु बनकर रह जाते हैं, और किताबों में बन्द हो जाते हैं। समाज के विकास और उसे जीवन्त बनाए रखने के लिए (उदाहरणार्थ) गोस्वामी तुलसीदास ने राम का चरित्र मानव-जीवन के मूल्यों का समूह बनाकर ही चित्रित किया है। फलस्वरूप वह दिन-दूना-रात चौगुना फैल रहा है, जब कि चार्वाक् दर्शन¹⁷ का आज नाम लेने वाला भी ढूँढ़े नहीं मिलता। चार्वाक् एक दर्शन ही होकर रह गया, संस्कृति नहीं बन सका, क्योंकि उसमें शाश्वत जीवन-मूल्य निहित नहीं थे।

संस्कृति की विरासत किसी को अपने आप नहीं मिलती। वह सीखी जाती है और प्रत्येक पीढ़ी उसे नए सिरे से ग्रहण करती है। यदि यह

17. चार्वाक् = चारु + वाक् = मनमोहक वचन। चार्वाक् नाम से वेद-विरोधी दर्शन ही प्रस्तुत हुआ था, जो आज-कल की भोग-परायण पाश्चात्य विचारधारा से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। इसका सार था :

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

अर्थात् जब तक जियो, सुख से जियो, कर्ज लेकर भी घी पियो। देह जब जलकर भस्म हो जाएगी तब वह फिर वापस थोड़े आएगी। यानी आवागमन सिद्धान्त मिथ्या है। इसलिए खाओ पियो, मीज करो। (Eat, drink and be merry) ।

प्रणाली एक शताब्दी तक रुकी रहे, तो संस्कृति का स्रोत सूख जाए, और हम फिर से असम्भ्य हो जाएं। वह मनुष्य (या साहित्यकार) सचमुच सौभाग्यशाली होगा जो मरने से पहिले अपनी संस्कृति की यथासंभव अधिक से अधिक विरासत प्राप्त कर ले, और उसे अगली पीढ़ी के लिए दे जाए; उस विरासत की धारा गंगा-यमुना की धारा के समान अटूट रहे, यही इसका पोषण है। यही इसका अमर जीवन या शाश्वत्य है जिसके लिए वह अपनी अन्तिम श्वास तक उस विरासत का ऋणी रहेगा। इस विरासत की धारा आगे बढ़ती है साहित्य के माध्यम से। इसीलिए साहित्य संस्कृति का वाहक होता है और साहित्यकार उसका रक्षक एवं पोषक बनता है।

3. अनल-प्रकाश : कथ्य

संसार में अनेक सभ्यताओं के ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं। बहुत सी तो केवल पुस्तकों में जीवित हैं। यों बहुत सी सभ्यताएं उभरीं, और फिर लुप्त हुईं। उनकी जगह नई आईं। वे भी लुप्त हुईं। किन्तु सभ्यताओं के विकास और विनाश के इस क्रम में क्या कोई नियमितता है? क्या कोई ऐसा नियम भी है जिसके अनुसार हम पिछली सभ्यताओं का अध्ययन करके अपने भविष्य के बारे में कुछ कह सकें? कुछ विचारकों ने इस विषय में सोचा है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग की चतुर्युगी के बाद फिर से वही क्रम आरम्भ होगा, ऐसा कुछ पुराणों का मत है। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने भी इसका अनुमोदन किया है। किन्तु नीत्शे की दृष्टि में पुनरावृत्ति का यह दर्शन केवल पागलपन है।

यह भी कहा जाता है कि इतिहास अपने को दोहराता है। यह सही है; किन्तु मोटे तौर पर ही। हम यह तो आशा कर सकते हैं कि भविष्य में भी नए राष्ट्र उभरेंगे, पुराने मिटेंगे। यह भी दिखता है कि नई-नई खोजें और नई-नई भूलें होंगी; और इनसे विचारकों के लिए नई-नई विचार सामग्री मिलेगी। यह भी मानना होगा कि नई पीढ़ी पुरानी से विद्रोह करेगी। उस विद्रोह को भी प्रतिक्रिया होगी। फिर भी पुराना मिटेगा ही; नया आएगा ही; और साहित्य के लिए नई सामग्री जुटती ही रहेगी। किन्तु ऐसा कुछ निश्चित नहीं है कि पुराना इतिहास ज्यों का त्यों फिर से दोहराया जाएगा, वैसा ही समाज फिर से आरूप में आएगा जैसे गुजर चुका है, या सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि फिर से वैसे

3.2 धर्म और समाज

धर्म वह तत्त्व है जिसे मनुष्य अपनी उन्नति और भलाई के लिए

धारण करता है⁸ । इसलिए धर्म में वे सभी तत्त्व होने चाहिए जो मनुष्य की उन्नति और भलाई के लिए आवश्यक होते हैं । इतिहास में बहुत से धर्मों से हमारा परिचय होता है । उनमें से अधिकांश तो सम्प्रदाय ही हैं जो धर्म के नाम पर प्रचलित हो गए हैं । लोगों ने कुछ अपनी शिक्षाएं, कुछ नैतिकता के नियम और कुछ नित्य कर्म मिलाकर एक-एक धर्म बना लिया । देश-काल के अनुसार इनमें कुछ अन्तर हो गया । किन्तु इस थोड़े से अन्तर के अतिरिक्त मनुष्य के लिए वास्तव में जो कुछ आवश्यक है, उसमें कुछ विशेष अन्तर न होना चाहिए । मनुष्य का धर्म 'मानव धर्म' है; वह मनुष्य मात्र के लिए एक ही होना चाहिए था, और अगर छोटे-मोटे मतभेदों में न पड़ें तो आज भी सभी धर्म एक हो जाएं । मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं⁹ । ईसा के भी दस धर्मदेश हैं । सतनामियों के 'आदि उपदेश' में 'बारह हुकुम' दिए हुए हैं । और सभी धर्मों-मतों में कर्मो-बेश ऐसे ही नियम हैं । किन्तु ऐसा लगता है कि कभी भी, कहीं भी इनका पूरी तरह पालन नहीं हो सका । इसीलिए धर्मोपदेश भी साहित्यकार की लेखनी से निकलना आवश्यक होता रहा है । युगानुरूप धर्म की व्याख्या सदा अपेक्षित रही है । कभी-कभी तो साहित्यकार, धर्मोपदेशक और मत/मजहब के प्रवर्तक में भेद करना भी कठिन हो जाता है ।

इतिहासकार स्वभाव से ही शंकालु हुआ करता है । किन्तु धर्म के प्रति उसके मन में भी आदर रहा करता है । इसका कारण यह है कि धर्म का प्रभाव वह सब जगह और सभी युगों में देखता है । धर्म पर करोड़ों का विश्वास है । दुखी, पीड़ित, भयभीत और वृद्ध मानवता को इससे

18. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः । कणाद मुनिः वैशेषिक शास्त्र ।
जिससे अभ्युदय और कल्याण सिद्ध हो, वही धर्म है ।

और भी देखिए, अनल-प्रकाश, मार्गान्वेषण 16 ।

19. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धौर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ मनुस्मृति, 6/92 ।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम (मन को वश में रखना), अस्तेय (अन्याय से किसी का अंश न लेना), शारीरिक पवित्रता, इन्द्रियों को विषयों से रोकना, बुद्धि विद्या, सत्य और क्रोध न करना, ये दस धर्म के लक्षण हैं ।

शान्ति मिलती है; दिव्य सुख मिलता है। यह सुख-शान्ति किसी भी अन्य प्रकार की सहायता से अधिक मूल्यवान है। शासक धर्म का भय दिखाकर जनता पर अपना अधिकार जमाता है। साथ ही साथ वह जनता के धर्म के प्रति सहानुभूति रखकर उसकी श्रद्धा और आदर प्राप्त कर सकता है, उसके अधिक निकट पहुंच सकता है। विचारक भी कहता है कि धर्म की रक्षा होगी तो वह हमारी रक्षा करेगा—धर्मो रक्षति रक्षितः²⁰।

प्रायः सभी सामाजिक व्यवस्था धर्म के आधार पर चला करती है। कुछ ऐसे समाजों का संगठन भी हुआ है जिनका आधार धर्म नहीं है; किन्तु वे किसी एक विशेष उद्देश्य के लिए हुआ करते हैं। मानव-जीवन के लिए आवश्यक सभी मार्ग-दर्शन उनसे नहीं मिल सकता। वास्तव में धर्म-विहीन समाज की तो कल्पना ही नहीं हो सकती। कोई भी समाज अपने जैसे दिखने वालों का नियन्त्रण नहीं माना करता। “इसलिए राजा को भी लोक-रक्षार्थ ईश्वर का भेजा हुआ देवता²¹ माना गया है। ‘बालोऽपि नाव-मन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः, महती देवता ह्येषा नर रूपेण तिष्ठति”, और “दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा” जैसी उक्तियों के पीछे यही भावना रही है। समाज को संगठित रखने के लिए राजा या शासक का अस्तित्व आवश्यक होता है।

3.3 राष्ट्र और समाज

अनेक समाज परस्पर मिल-जुलकर रहने में लाभ-समझते हैं। वे

20. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्। मनुस्मृति, 8/15
अर्थात् नष्ट हुआ धर्म ही नाश करता है और रक्षा किया हुआ धर्म ही रक्षा करता है। “नष्ट किया हुआ धर्म कहीं हमें नष्ट न कर दे” यह समझकर धर्म का कभी नाश न करना चाहिए। आग का धर्म है ताप पहुंचाना। यदि ताप न पहुंचा सके तो आग, आग ही न रहे। इसी प्रकार मनुष्य में यदि मानव धर्म न हो तो वह मनुष्य न रहे, वह नष्ट ही हुआ समझना चाहिए।

21. अराजके हि लोकेस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानम् असृजत्प्रभुः ॥ मनुस्मृति, 73

आपस में मिलकर किसी भौगोलिक सीमा में रहते हुए अपनी रक्षा के उद्देश्य से वचन-बद्ध होकर अपना राष्ट्र बना लेते हैं²²। इन सबके बीच जो योजक तत्त्व होता है, वही सभ्यता कहलाता है। कभी-कभी यह योजक तत्त्व शिथिल हो जाता है, तब राष्ट्र बिखरने लगता है। राष्ट्र नष्ट भी हो जाते हैं; पुरानी बस्तियां उजड़ भी जाती हैं; या फिर संख्या-वृद्धि के कारण विवश होकर मनुष्य स्थान त्याग देता है। किन्तु अपने को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने वाला मानव अपनी कला, अपने औजार और अपनी स्मृतियां अपने साथ लिए हुए चल देता है। यदि शिक्षा के कारण उसकी स्मृतियां गहरी हैं तो सभ्यता भी उसके साथ ही चलती है और अपने लिए कहीं दूसरा उपयुक्त स्थल खोज लेती है। कहते हैं कि आर्य-सभ्यता इसी प्रकार सारे संसार में फैली, और देश-काल के अनुरूप बदलती हुई सुमेर, अरब, मंगोल आदि नामों से आगे बढ़ी²³। यूनानी सभ्यता रोम पहुंची, रोमीय सभ्यता पश्चिमी योरोप में फैली। वहां से अमेरिका पहुंची, जहां अब फूल-फल रही है। सबने अपने-अपने अलग-अलग राष्ट्र बना लिए।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि मानव की प्रकृति निम्नग्रा होती है, और इसी नियम के अनुसार अपने मूल स्थान से दूर जाकर अन्य नामों से प्रसिद्ध होकर विभिन्न सभ्यताएं देश-काल के प्रभाव में आकर वैदिक मान्यताओं से दूर होती गईं। यहां तक कि कहीं-कहीं कुछ समय बाद किन्हीं अर्थों में ये विरोधी सभ्यताएं बन गईं और अपने अस्तित्व तथा प्रसार के लिए ऐसे व्यवहारों पर उतर आईं जो वैदिक सभ्यता में मानवता-विरोधी या गृहित समझे जाते थे। ऐसे लोग दस्यु, दनुज, दानव आदि कहलाए और मानवता उनसे अपनी रक्षा की चिन्ता में फँसी, उन्हें

अर्थात् इस संसार में राजा के न रहने से सर्वत्र भय हाहाकार मचने लगा। अतः इनके रक्षार्थ प्रभु ने राजा को बनाया।

22. देखिए अनल-प्रकाश, क्रान्ति-रेखण।

23. देखिए वही ; और

“गंगा-यमुना के बीच का देश ही ब्रह्मर्षि देश था जहाँ वैदिक सभ्यता और संस्कृति परिपक्व होकर अन्यत्र प्रसारित हुई।”

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 13।

राक्षस (=रक्ष्यते अस्मात्, अर्थात् इनसे रक्षा की जानी चाहिए) कहने लगी । मनुस्मृति (10, 43/44) के अनुसार :

शनकैस्तु क्रियालोपाद् इमाः क्षत्रिय जातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च
पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ,
पारदाः पल्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ।

अर्थात् ये जातियां पहिले क्षत्रिय थीं । जब इनके आर्य कर्म-धर्म लुप्त हो गए या ये आर्यावर्त के बाहर इधर-उधर के देशों में चले गए और वहां इनको यज्ञ, अध्यापन और प्रायश्चित्त आदि के लिए योग्य विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण न मिलने लगे, तब ये धीरे-धीरे अनार्य हो गईं और, पौण्ड्रक, ओड्र (उड़ीसा की), द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पहलव चीन, किरात, दरद और खश कहलाई ।

प्रत्येक राष्ट्र अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर ही कभी सुदृढ़ और कभी शिथिल होता रहता है । समय-समय पर कुछ दिव्य महापुरुषों का आविर्भाव होता है जो शिथिलता के कारणों को दूर कर पुनः एक सुदृढ़ राष्ट्र का गठन करते हैं । शिथिलता के कारण भीतरी भी हो सकते हैं और बाहरी भी । भीतरी कारण होते हैं राष्ट्र के अंगीभूत समाजों (घटकों) के पारस्परिक वैमनस्य; और बाहरी कारण होते हैं विदेशी आक्रमण ।

3.4 राष्ट्रवाद और भारतीय साहित्य

बहुत प्राचीन काल से ही भारत एक भौगोलिक इकाई रहा है । भारतीय ऋषियों ने बहुत सोच-विचार कर निश्चित किया था कि :

“उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यस्य संततिः ।”

अर्थात् समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर और हिमालय पर्वत के दक्षिण में स्थित समस्त देश 'भारत' नाम से ख्यात है और उसमें रहने वाले 'भारती(य)' होते हैं । इस प्रकार कश्मीर से कन्याकुमारी तक और सिन्धु से (प्राचीन काल में गान्धार-बलूचिस्तान से) असम तक (प्राचीन काल में ब्रह्मदेश, किंवा जावा, सुमात्रा, बाली द्वीप आदि तक) फैला हुआ देश भारत नाम का एक राष्ट्र है । इसी एक-राष्ट्र के सिद्धान्त की रक्षा

के लिए समय-समय पर महापुरुषों ने अपना जीवन समर्पित किया है। साहित्यकार भी राष्ट्रीय पक्ष को बलिष्ठ और विजयी बनाने के लिए त्याग और बलिदान की भावना जागृत करता है। विदेशी आक्रान्ताओं से अपने देश की रक्षा करने और देश को स्वाधीन बनाए रखने के लिए देश-वासियों को अपनी सुख-सुविधा, अपने धन और प्राणों तक का बलिदान करना ही होगा। कदाचित्, देश पराधीन हो जाए तो फिर स्वाधीन होने के लिए संघर्ष अपरिहार्य होता है, और संघर्ष में बलिदान आवश्यक होता है²⁴।

विद्वान कहते हैं कि हिमालय के इसी प्रांगण में, जिसे भारत कहते हैं, ज्ञान का सर्वप्रथम उदय हुआ, और यहीं से वह सर्वत्र फैला²⁵। वेदों में युगों-युगों का ज्ञान संकलित है। उसी के आधार पर यह देश जगद्गुरु बना था। मनु महाराज ने लिखा है :

“एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।” मनुस्मृति, 2/20 ।

अर्थात् इस देश में उत्पन्न अंग्रजों (गुरु-जनों) से पृथ्वी के सब मनुष्य अपने-अपने सदाचार की शिक्षा प्राप्त करें। इस प्रकार संसार को सभ्यता का सन्देश देनेवाला भारत आदि काल से ही एक राष्ट्र (के सिद्धान्त का प्रतिपादक) रहा है। यह एक-राष्ट्रवाद भारतीय साहित्य में समय-समय पर मुखर होता रहा है; और साहित्य में उन्हीं महापुरुषों के चरित्र विशेष उत्साह से गाए जाते रहे हैं जिन्होंने राष्ट्र को एकीकृत रखने के लिए अपने जीवन समर्पित किए थे।

कुछ लोग कहते हैं कि भारत का वर्तमान राष्ट्रवाद आधुनिक युग की देन है और साहित्य की एक प्रमुख विकासशील प्रवृत्ति है। कुछ विचारक कुछ और भी पीछे जाकर इस प्रवृत्ति का विकास-क्रम मुस्लिम आक्रमणों और उनके प्रति भारतीय प्रतिक्रिया से मानते हैं। इन अध्येताओं की दृष्टि में केवल आधुनिक इतिहास ही गूंजता रहा है, जिसे लिखने-लिखाने वाले स्वयं एकांगी विचार-धारा में बहते रहे हैं। वे भारत के प्राचीन इतिहास की, जो साहित्य के रूप में विद्यमान है, उपेक्षा ही करते रहे हैं। वास्तव में हमारी आजादी के बाद भी राष्ट्रीयता का नाम तो लिया गया, किन्तु

24. देखिए अनल-प्रकाश, महाप्रयाण, 109 ।

25. देखिए पाद-टिप्पणी 23 ।

उसके उपयुक्त शिक्षा-क्रम के बारे में कभी सोचा ही नहीं गया । इसके लिए आवश्यक यह था कि हम अपने इतिहास का सही दृष्टि-कोण से अध्ययन करते जिससे आसेतु-हिमालय हम सदा राष्ट्रीयता के रस में डूबे रहते । हमारी राष्ट्रीयता प्रायः सोई रहती है । उस पर इतिहास-क्रम के ऐसे गन्दे परदे पड़े रहते हैं जिनका निराकरण आज बहुत जरूरी हो गया है । हमें अपने जीवन को टुकड़ों में देखने की आदत पड़ गई है और हम अपने इतिहास को भी टुकड़ों में देखने को आदी हो गए हैं । विदेशियों के कहने से हम अपने इतिहास को काल-खण्डों में और विदेशी वर्गों में बांटकर पढ़ने लगे हैं । इससे अतीत से चली आ रही हमारी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा रुक जाती है, एकात्मता की भावना समाप्त हो जाती है । हिन्दू काल, मुस्लिम काल, अंग्रेजी काल जैसे वर्गीकरण हमारे लिए उपयोगी नहीं हैं । इस प्रकार के अध्ययन से भारत की मिली-जुली संस्कृति को बड़ा आघात पहुंचता है । हमारी शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिसमें साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध न रहे ।

वास्तव में यदि ध्यान से देखा जाए तो वेदों की राष्ट्रीय भावना जो 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' (ऋग्वेद के वाक् सूत्र में वाणी कहती है कि मैं राष्ट्र हूं और वसुओं के साथ चलती हूं) आदि अनेक ऋचाओं में गूंजती है, बाद में भी कभी मरने नहीं पाई । सच तो यह है कि एक राष्ट्रवाद ही साहित्य की उत्कृष्टता की कसौटी रहा है । उदाहरण के लिए रघुवंश में रघु-दिविजय, रामायण में राम की वनवास-कालीन उपलब्धियां और फिर अश्वमेध यज्ञ, महाभारत में युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और कृष्ण द्वारा द्वारिका से असम (प्राग्ज्योतिष) तक देश का एकीकरण आदि उत्कृष्टतम साहित्य के आधार बने । आज उत्तर और दक्षिण का इतिहास अलग-अलग पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है । भारत कभी उत्तर-दक्षिण के रूप में विभक्त रहा भी नहीं है । भारतीय संस्कृति के प्रायः सभी आचार्य दक्षिण में आविर्भूत हुए थे । हिन्द महासागर के सभी परिवहन मार्ग दक्षिण के चीन राजा राज्यवर्द्धन के अधिकार में थे और भारत से सम्बद्ध सारा विश्व-व्यापार उस समय उन्हीं के हाथों में था ।

3.5 हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रवाद

हिन्दी-साहित्य का इतिहास लगभग हजार-बारह सौ साल का है ।

उसके उपयुक्त शिक्षा-क्रम के बारे में कभी सोचा ही नहीं गया। इसके लिए आवश्यक यह था कि हम अपने इतिहास का सही दृष्टि-कोण से अध्ययन करते जिससे आसेतु-हिमालय हम सब राष्ट्रियता के रस में डूबे रहते। हमारी राष्ट्रियता प्रायः सोई रहती है। उस पर इतिहास-क्रम के ऐसे गन्दे परदे पड़े रहते हैं जिनका निराकरण आज बहुत जरूरी हो गया है। हमें अपने जीवन को टुकड़ों में देखने की आदत पड़ गई है और हम अपने इतिहास को भी टुकड़ों में देखने को आदी हो गए हैं। विदेशियों के कहने से हम अपने इतिहास को काल-खण्डों में और विदेशी वर्गों में बाँटकर पढ़ने लगे हैं। इससे अतीत से चली आ रही हमारी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा रुक जाती है, एकात्मता की भावना समाप्त हो जाती है। हिन्दू काल, मुस्लिम काल, अंग्रेजी काल जैसे वर्गीकरण हमारे लिए उपयोगी नहीं हैं। इस प्रकार के अध्ययन से भारत की मिली-जुली संस्कृति को बड़ा आघात पहुँचता है। हमारी शब्दावली ऐसी होनी चाहिए जिसमें साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध न रहे।

वास्तव में यदि ध्यान से देखा जाए तो वेदों की राष्ट्रिय भावना जो 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' (ऋग्वेद के वाक् सूत्र में वाणी कहती है कि मैं राष्ट्र हूँ और वसुओं के साथ चलती हूँ) आदि अनेक ऋचाओं में गूँजती है, बाद में भी कभी मरने नहीं पाई। सच तो यह है कि एक राष्ट्रवाद ही साहित्य की उत्कृष्टता की कसौटी रहा है। उदाहरण के लिए रघुवंश में रघु-दिविजय, रामायण में राम की वनवास-कालीन उपलब्धियाँ और फिर अश्वमेध यज्ञ, महाभारत में युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और कृष्ण द्वारा द्रारिका से असम (प्राग्ज्योतिष) तक देश का एकीकरण आदि उत्कृष्टतम साहित्य के आधार बने। आज उत्तर और दक्षिण का इतिहास अलग-अलग पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। भारत कभी उत्तर-दक्षिण के रूप में विभक्त रहा भी नहीं है। भारतीय संस्कृति के प्रायः सभी आचार्य दक्षिण में आविर्भूत हुए थे। हिन्द महासागर के सभी परिवहन मार्ग दक्षिण के चोल राजा राज्यवर्द्धन के अधिकार में थे और भारत से सम्बद्ध सारा विश्व-व्यापार उस समय उन्हीं के हाथों में था।

3.5 हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रवाद

हिन्दी-साहित्य का इतिहास लगभग हजार-बारह सौ साल का है।

इस काल का विभाजन भी किसी वैज्ञानिक आधार पर हुआ नहीं प्रतीत होता। दुर्भाग्य से लगभग यही जमाना भारत की गुलामी का भी रहा। शायद गुलामी के दबाव के कारण ही साहित्य की खुलकर समीक्षा न हो पाई हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के आरम्भिक काल को वीर-गाथा काल कहा है। उस समय यह देश अनेक राज्यों में बँट गया था। जब कभी विदेशियों द्वारा ऐसे राज्यों पर आक्रमण होता था, तब राज्य-रक्षा की दृष्टि से वीरों के हृदयों में उत्साह भरने के लिए चारणों की रचनाएं प्रचुर मात्रा में लिखी जाती थीं। राज्यों के परस्पर युद्धों में भी वीर रस की रचनाएं लिखी जाती थीं। किन्तु ऐसे अवसरों पर राष्ट्रीयता अधिकतर वीर-पूजा या आश्रयदाता के विरुद्ध-गान की भावना में ही सीमित रह जाती थी। वीर-गाथा काल के बाद का समय भी भक्ति काल, रीति काल या आधुनिक काल ही कहा गया है। उस समय के वीर रस के साहित्य का भी विशेष उल्लेख नहीं हुआ। किन्तु बहुत से विद्वानों ने गम्भीर शोध करके यह सिद्ध कर दिया है कि राष्ट्रीयता की भावना और एक-राष्ट्र की संकल्पना जो वेदों ने हमें सुझाई, इस देश में बराबर पनपती ही रही है, कभी लुप्त नहीं हुई, भले ही गुलामी के कारण वह विशेष मुखर न हो पाई हो।

अनादि काल से भारत में चली आई एक-राष्ट्र की भावना प्रस्तुत कृति में उभार कर सामने लाई गई है, जिसकी आज ही नहीं सदा ही आवश्यकता बनी रही है। यही प्रस्तुत रचना का उद्देश्य है, यही इस कृति का कथ्य है, जिसे कृतिकारों ने आद्यन्त दृष्टि में रखा है। वेद के निर्देश 'मा नो दुःशंस ईजत'²⁶ के अनुसार विदेशी दस्यु आक्रान्ताओं का प्रतिकार तो होता ही रहा है, देशी शासक यदि दुष्ट हुए तो उनके विरुद्ध भी खड्ग तोलने में कोताही नहीं हुई, ऐसा इस कृति में प्रतिपादित हुआ है। पाठक इसे पढ़ते हुए आदि से अन्त तक राष्ट्रीय एकता के रस में सराबोर रहता है।

26. हत वृत्रं मुदानय दन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईजत ।

ऋग्वेद 1/23/9 ।

अर्थात् हे शोभन दान से युवन जगो, तुम बलिष्ठ दन्द्र (नेता या राजा) के साथ होकर वृत्र (दुष्ट) को नष्ट करो। दुष्ट हम पर शासन न करे।

4. अनल-प्रकाश : एक-राष्ट्र-संगीत

अंग्रेजों ने भारत की राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुंचाने के लिए, अपना स्वार्थ साधने की दृष्टि से और भारतीयों को अपना गुलाम बनाए रखने के उद्देश्य से यह प्रचारित किया था कि यूरोप, अमेरिका आदि की भांति भारत भी एक देश नहीं, अनेक देशों का समूह है। उनके अनुसार भारत के सभी प्रदेश अलग-अलग देश हैं जिनमें कोई विशेष समानता नहीं है। यह सही है कि भारत एशिया महाद्वीप का एक भाग है, बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि यह कभी एक उपमहाद्वीप भी था, जिसमें पश्चिम में अफगानिस्तान (गान्धार), बलूचिस्तान, पूर्व में ब्रह्मदेश, मलेशिया (मलय द्वीप), जावा (यव द्वीप), सुमात्रा, बाली द्वीप आदि और दक्षिण में श्रीलंका (सिंहल द्वीप) आदि सम्मिलित माने जाते थे। किन्तु विघटन के उद्देश्य से अंग्रेजों ने भारत के प्रदेशों को भी अलग-अलग देश मानकर अलगाव का बीज बोया। ब्रह्मदेश और श्रीलंका को अलग करके उन्होंने अपने उपनिवेश बना लिए।

भारत को एक देश सिद्ध करने वाले जो भी तत्त्व भारत के इतिहास में थे, उन्हें विदेशियों ने चतुरतापूर्वक नकारा और हमारे साहित्य के वे अंश तोड़-मरोड़कर अर्थ का अनर्थ करके प्रस्तुत किए। उदाहरणार्थ उन्होंने रामायण और महाभारत को कल्पित गाथा या मिथक कह दिया और यह प्रचारित किया कि राम और कृष्ण आदि भारतीय इतिहास के कोई जीते-जागते व्यक्ति न थे। आज-कल भी अनेक इतिहासकार उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर अपना राग अलाप रहे हैं। खैर, हमें देखना यह है कि भारत एक राष्ट्र है, यह तथ्य अनल-प्रकाश में किस प्रकार उभारा गया है।

वास्तव में अनल-प्रकाश में राष्ट्रीय भावना और भारत एक-राष्ट्र है, यह परिकल्पना आदि से अन्त तक पदे-पदे ध्वनित होती है। ऐसा लगता है कि विदेशियों के दुष्प्रचार का उत्तर देने के लिए ही इस महाकाव्य की रचना हुई है। प्रत्येक भाग का, जिसे महाकाव्य में किरण

कहा गया है, आरंभ ही राष्ट्र-वन्दना से होता है जो एकात्मता की भावना से ओत-प्रोत है। राष्ट्र-वन्दना ही सर्वत्र अन्य किसी स्तुति से पहिले दी गई है।

4.2 पौराणिक उल्लेख

वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण भाग विधि-प्रधान, धर्म-शास्त्र विधान-प्रधान, और पुराण प्रक्रिया-प्रयोग और उदाहरण-प्रधान हैं। वेदांग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द का ज्ञान भी अग्नि आदि पुराणों के अनुशीलन से होता है। पुराणों में सभी शास्त्रों, सभी कलाओं और सभी विद्याओं का समावेश है। इतिहास और भूगोल से सबधित अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री भी पुराणों में है। पुराणों में जो भूगोल शास्त्र का वर्णन है, उसे पारिभाषिक शब्दावली में 'भुवनकोश वर्णन' कहा गया है, क्योंकि भूगोल में तो इस पृथ्वी लोक का ही वर्णन होता है, जब कि पौराणिक भूगोल में इस भूलोक के अतिरिक्त अन्य तेरह भुवनों का भी वर्णन किया गया है। भुवनों के तीन वर्ग हैं : ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक और अधोलोक। मध्य लोक भूलोक है। इसके ऊपर क्रमशः भुवः लोक, स्वः लोक, महः लोक, जनः लोक, तपः लोक तथा सत्य लोक हैं जिनके नाम सम्भवतया तैत्तिरीय उपनिषद् से लिए गए हैं, जहां यह मन्त्र आया है :

“ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।
तैत्ति० प्रपा० 10/अनु० 27 ।

पुराणों में सभी भुवनों का वर्णन है, किन्तु भूलोक का अत्यन्त विस्तार से विवरण दिया गया है। पुराण साहित्य में यह सारा वर्णन सत्य है या असत्य, इस विवाद में न जाकर केवल यही निवेदन करना अभीष्ट है कि यदि इसे असत्य या कल्पित भी मान लिया जाए तो भी इसके रचयिता ऋषियों की कल्पना नितान्त मौलिक है और भारत की राष्ट्रीय एकात्मता की वैदिक भावना का हजारों साल पुराना प्रमाण प्रस्तुत करती है।

भूलोक का दूसरा नाम सप्तद्वीपा वसुमती (मतान्तर से चतुर्द्वीपा) है जिसमें जम्बू, प्लक्ष, शाक तथा पुष्कर, ये सात द्वीप हैं। इसीलिए यह पृथ्वी सप्तद्वीपा कहलाती है। स्वायम्भुव मनु के द्वितीय पुत्र प्रियव्रत ने आग्नीध्र आदि अपने सात पुत्रों को क्रमशः इन सात द्वीपों का सम्राट् नियुक्त किया। इन सात द्वीपों में जम्बू द्वीप ही

प्राचीनतम बृहत्तम भारतवर्ष का नाम है जिसके अधिपति मनु के ज्येष्ठ पौत्र महाराज आग्नीध्र थे। इनके नाभि आदि नौ पुत्र हुए जिनमें जम्बू द्वीप के नौ भाग करके प्रत्येक को एक-एक भाग का अधिपति बनाया गया। ये नौ विभाग नौ वर्ष (भूखण्ड) कहलाते हैं जो उन्हीं अधिपतियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। ज्येष्ठ पुत्र नाभि के भूखण्ड को अजनाभवर्ष कहा गया है। महाराज नाभि को एक दिव्य पुत्र ऋषभ की प्राप्ति हुई जो भगवान के ऋषभ अवतार कहलाते हैं। ऋषभदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र महायोगी भरत हुए जिनके नाम से अजनाभवर्ष का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भारतवर्ष के वर्णन में यहां के पर्वतों, नदियों, नगरों, ग्रामों आदि के सुन्दर चित्रण के साथ ही वहां रहनेवाली जातियों का भी वर्णन है। वहां के राजाओं के नाम पर ही उन-उन स्थानों का नामकरण हुआ है। जैसे उत्कल राजा के नाम पर ओड्र (उड़ीसा), राजा शर्याति के पुत्र आनर्त के नाम पर आनर्त देश (सौराष्ट्र—गुजरात), आनर्त के पुत्र रैवत के नाम पर रैवत (या रैवतक) पर्वत तथा ययाति के वंश में उत्पन्न राजा बलि के पांच पुत्रों, अंग, बंग कलिंग, सुह्य, और पौण्ड्र के नाम पर पांच देशों के नाम पड़े :

“अंग बंग कलिंग सुह्य पौण्ड्राख्यं वालेयं क्षत्रमजन्यत।

तन्नाम संतति संज्ञाश्च पंच विषया बभूवुः।”

विष्णु पुराण, 4/18/13-14

इसी प्रकार राजा विशाल के नाम पर विशाला (वैशाली), युवनाश्व के पुत्र शावस्त के नाम पर शावस्ती (श्रावस्ती) तथा कुरु, पांचाल आदि जनपदों के नाम भी विशिष्ट राजाओं या विशिष्ट व्यक्तियों के नाम पर ही प्रसिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्ध में अनेक रोचक आख्यान भी हैं। प्रायः सम्पूर्ण भुवनकोश वर्णन ही आख्यान शैली में है। पुराणों का यह भूगोल-वर्णन सिद्ध करता है कि भारत आदि काल से ही एक राष्ट्र रहा है।

4.3 भौगोलिक एकता

ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीगणेश और मंगलाचरण के बाद ही उस राष्ट्र की वन्दना की गई है जिसमें बसी हुई, सौराष्ट्र से असम तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रकृति द्वारा रची हुई एक धरती की सब सन्तानें भारतीय हैं और ‘हम एक हैं’ गायन करती हैं; ऐसा राष्ट्र हमें

माता, पिता और गुरु के समान प्रिय है²⁷ । ऐसा सुन्दर राष्ट्र-एकात्मता स्तोत्र अन्यत्र दुर्लभ है । गुप्त-बन्धुओं की दृष्टि में राष्ट्र-प्रेम देश-प्रेम का ही पर्याय है । पूर्व-पीठिका के अंतिम छन्दों में भी कवियों ने अनल-वंश की दिव्य कथा रूपी सीपी के अन्दर राष्ट्र-प्रेम रूपी मोती पलता देखा है :

“अनल-वंश की दिव्य कथा सीपी है सुन्दर ,
मोती पलता राष्ट्र-प्रेम का जिसके अन्दर ।
खोल उठा जो एक नजर भी डाल सकेंगे ,
जन-हित की वे ललक हृदय में पाल सकेंगे ।”

अनल-प्रकाश, आभार, 24 ।

साथ ही उन्होंने गर्वोक्ति भी की है :

“पढ़ें-सुनें जो तनिक भी यह गाथा गुण-युक्त ,
राष्ट्र-प्रेम का अमृत पी बनें अमर वे मुक्त ।” वही 25 ।

ऋग्वेद 8/6/28 वा० स० 26/15 के अनुसार, वन, उपवन, अरण्य, नदियों के संगम तथा पर्वतों की उपत्यकाओं में विशुद्ध बुद्धि, भगवत्तत्त्व के दर्शन और भगवत् साक्षात्कार के उपयुक्त वातावरण होता है । अनल-प्रकाश²⁸ में भी राष्ट्र भर में बिखरे हुए वेद-वन्दित पुण्य-प्रद तन-मन-ताप-हारी वनों में से द्वादश अरण्यों की अर्चा करते हुए कवियों ने कहा है कि इन सुरम्य वनों में ऋषि-मुनियों के पवित्र निवास हैं और गुरुकुलों में अच्छे चरित्र की शिक्षा दी जाती है । पुराणों में भी भारत के वर्णन-प्रसंग में अनेक अरण्यों का माहात्म्य बताया गया है जिनमें से ये बारह अति प्रसिद्ध हैं :

1. दण्डकारण्य, गोदावरी से चित्रकूट तक फैला हुआ;
2. विन्ध्यारण्य, जहाँ श्रीराम ने वन-वास के बारह वर्ष बिताए थे;
3. पुष्करारण्य, जो अजमेर में है;
4. नैमिषारण्य, नीमसार-मिसरिख के निकट;
5. कुरु-जांगल, कुरुक्षेत्र का;
6. उत्पलावतंकारण्य, गंगा के दक्षिणी तट पर कानपुर के पश्चिम

27. देखिए अनल-प्रकाश, पूर्व-पीठिका, राष्ट्र-वन्दना ।

28. देखिए अनल-प्रकाश, पहिली किरण, राष्ट्र-वन्दना ।

ब्रह्मावर्त या बिठूर के निकट जहां बाल्मीकि ऋषि का आश्रम था और सीताजी ने लव-कुश को जन्म दिया था;

7. जम्बुकारण्य, नर्मदा में जम्बू सरोवर के आस-पास जहाँ महर्षि भृगु का आश्रम था;
8. अर्बुदारण्य, राजस्थान में आबू पर्वत पर;
9. हिमवदारण्य, गंगा, सिन्धु, सरस्वती और ब्रह्मपुत्र आदि का उद्गम-स्थान और शिव पार्वती की क्रीड़ा-भूमि;
10. घर्मरिण्य, पुराणों में इस नाम से चार अरण्यों का उल्लेख मिलता है : एक पश्चिम समुद्र के पास सिद्धपुर क्षेत्र में, दूसरा हिमालय में कण्वाश्रम के समीप, तीसरा मध्य प्रदेश में और चौथा गया के पास;
11. वेदारण्य, दक्षिण भारत में जहाँ वेदपुरीश्वर महादेव का तथा अन्य कई शिव मन्दिर हैं;
12. सैन्धवारण्य, सोवीर और सिन्धु देशों की सीमा पर जहाँ केतुमाला तथा मेध्या नदियां हैं ।

इसी प्रकार दूसरी किरण²⁹ में सोलह सुदृढ़ कुल-पर्वतों द्वारा धारण की हुई इस श्रेष्ठ सर्वोपम धरा का उल्लेख है । पुराणों में वर्णित ये सोलह कुल-पर्वत (धराधर) भी भारत में ही हैं और देश भर में इस प्रकार बिखरे हुए हैं :

1. भारत के उत्तर में स्थित पर्वतराज हिमालय;
2. भारत के मध्य में अरावली से राजशाही तक फैला हुआ विन्ध्याचल;
3. विन्ध्य के दक्षिण-पश्चिम में वेदवती, काली सिन्धु, बेतवा, चम्बल और शिप्रा आदि का उद्गम स्थल पारिजात;
4. ट्रावनकोर (तिरुवांकुर) जिले का मलयगिरि जहाँ चन्दन बहुत होता है;
5. महेन्द्राचल नाम के दो पर्वत हैं, एक बाल्मीकि रामायण का महेन्द्र-गिरि पश्चिमी घाट में है, जहाँ से कूदकर हनुमान जी लका गए थे, और दूसरा पुराणों के अनुसार पूर्वी घाट के उत्तर में उड़ोसा के मध्य तक फैला हुआ, जिसपर परशुराम रहते थे;

29. देखिए अनल-प्रकाश, दूसरी किरण, राष्ट्र-बन्दना ।

6. मध्य प्रदेश के रायगढ़ नगर से बिहार में मानभूमि के डालमा तक फैला हुआ शक्ति पर्वत या शक्तिमान;
7. चित्रकूट जहां श्रीराम वन-वास के समय रहे थे;
8. ऋक्षवान या वर्तमान विन्ध्याचल का मध्य भाग जहाँ से सोन, महानदी, मन्दाकिनी, नर्मदा, धसान और तमसा आदि नदियाँ निकलती हैं;
9. सह्यागिरि या पश्चिमी घाट का सह्याद्रि खण्ड;
10. विजयनगर, हम्पी एवं हास्पस के निकट माल्यवान एवं ऋष्यमूक;
11. सिकन्दराबाद से द्रोणाचल जाने वाली लाइन पर करमूल स्टेशन से एक सौ किलोमीटर दूर स्थित धीशैल या मल्लिकार्जुन जो साक्षात् नारायण रूप माना गया है;
12. गोड्रा से 40 किलोमीटर दूर अरुणाचल जिसके ऊपर पार्वती जी का बड़ा मन्दिर है और नीचे अरुणाचलेश्वर का मन्दिर है जिसका गोपुर विश्व के सभी मन्दिरों से चौड़ा है और चारों गोपुर दस-दस मंजिल ऊँचे हैं;
13. गुजरात में जूनागढ़ के पास रंवतगिरि या गिरनार पर्वत जिसे उज्जयन्त पर्वत भी कहते हैं;
14. असम में गुवाहाटी से कुछ दूर कामगिरि या कामाख्या;
15. नागपुर से 40 किलोमीटर रामटेक स्टेशन के पास रामगिरि या रामटेक; और
16. गोवर्धन, मथुरा से 20 किलोमीटर उत्तर और बरमाना से 18 किलोमीटर पश्चिमोत्तर 7 किलोमीटर लंबी 2 किलोमीटर चौड़ी पहाड़ी जिसकी लोग परिक्रमा करते हैं।

उपर्युक्त द्वादश अरण्य और सोलह कुल-पर्वत सारे देश में फैले हुए एक ही संस्कृति के गढ़ हैं जिनसे राष्ट्रीय एकता पुष्ट होती है। फिर पांचवीं किरण³⁰ में तो राष्ट्र की सीमा भी निश्चित कर दी गई है यद्यपि देश में अगणित नदियाँ और तीर्थ-स्थान हैं, किन्तु नगराज हिमालय की गोद (अचलांक) तजकर दोनों ओर बहते हुए दो महानद्य

सिन्धु और ब्रह्मपुत्र (जिसे तिब्बत में साँपू कहते हैं) इस राष्ट्र को इस प्रकार घेरते हैं मानो दोनों हाथ फैलाकर प्रकृति देवी इसे गले लगा रही है। फिर अरब सागर और बंगाल का आखात भी इसे दोनों ओर से, भेंटते हैं, जिससे तटों पर फेन उठता है मानो प्रसन्नता के मारे प्रकृति अपनी हँसी बिखेर रही है। इस वन्दना में तो प्रकारान्तर से मानो ऋषियों की पवित्र वाणी³¹ “उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्...” का ही मानवीकरण प्रस्तुत है।

पुराणों के अनुसार यद्यपि सभी तीर्थ उत्तम फल देने वाले, अतः सेव्य हैं, तथापि अपनी विशिष्टता के कारण सात शुभ पुरियां अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। गरुड़ पुराण (2/49/114) के अनुसार :

“अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका,
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः।

अर्थात् अयोध्या, मथुरा-वृन्दावन, मायापुरी (हरद्वार), काशी (वाराणसी), कांची (पेलार नदी के तट पर मद्रास से 75 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम स्थित शिवकांची एवं विष्णुकांची), अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारावती (द्वारिका), ये सात पुरियां मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। चार पवित्र धाम बदरीनाथ, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, और द्वारिका भी देश के चारों कोनों पर स्थित हैं जहां से समय-समय पर धार्मिक विषयों में लोगों का मार्गदर्शन किया जाता है। शिव पुराण में सूत जी की वार्ता आई है जब उन्होंने मुनियों से कहा था³² कि ‘हे मुनियों, सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल

31. देखिए अनुच्छेद 3.4।

32. सौराष्ट्रे सोमनाथं च, श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्,
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्,
केदारं हिमवत्पृष्ठे, डाकिन्या भीमशंकरम्
वाराणस्यां च विश्वेशं, अयम्बकं गौतमी-तटे,
वृन्दाथं चित्ताभूमौ, नागेशं वाणकायने,
सेतुबन्धे च रामेशं, घुश्मेशं च शिवालये,
द्रावर्षीतानि नामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्,
सर्वपापैश्चिन्मुक्तः सर्वं सिद्धिं फलं लभेत्।

पर मल्लिकार्जुन, उज्जैन में महाकाल, ओंकार (मालवा जनपद) में परमेश्वर या ओंकारेश्वर, हिमाचल में केदार, डाकिनी में (बम्बई से पूर्व लगभग 112 किलोमीटर और पुणे से उत्तर लगभग 69 किलोमीटर दूर) भीमशंकर, गौतमी तट पर (बम्बई से 200 किलोमीटर पूर्व ओर नासिक रोड रेलवे स्टेशन से 25 किलोमीटर दक्षिण त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमि (पटना-कलकत्ता रेल-मार्ग पर किऊल स्टेशन से दक्षिण-पूर्व 100 किलोमीटर देवघर) में वैद्यनाथेश्वर, दारुकावन में (द्वारिका के पास) नागेश्वर, सेतुबन्ध में रामेश्वर और शिवालय (मनमाड से 100 किलोमीटर और दौलताबाद से 20 किलोमीटर दूर बेरुल गांव के पास, अथवा कुछ लोगों के अनुसार राजस्थान के शिवाड़ नामक नगर में, घुश्मेश्वर, इन बारह (ज्योतिर्लिंगों के) नामों का जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियां प्राप्त कर लेता है। प्रातःकाल देश भर में फैले हुए इन स्थानों के पुण्य स्मरण के बहाने सारे देश की ही मानस परिक्रमा करने का निदेश धर्म-कार्य के रूप में देकर पुराण के रचयिता(ओं) ने अपनी ही राष्ट्र-वन्दना प्रस्तुत कर दी है। इन्हीं ज्योतिर्लिंगों, चार धामों और सप्त पुरियों का स्मरण अनल-प्रकाश³³ में करके कवि अपने राष्ट्र की भौगोलिक एकता का एक बार फिर दिग्दर्शन करा रहे हैं।

सातवीं किरण³⁴ में देश की छह ऋतुओं का उल्लेख है। छह स्पष्ट परिभाषित ऋतुएं सारे संसार में केवल भारत की ही विशेषता हैं। इस प्रकार समस्त भारतीयों का यह राष्ट्र स्वर्गोपम ही नहीं, प्रकृति देवी की सर्वोत्तम देन है जहाँ जन्म लेने के लिए देवता तक तरसते हैं और इसके गीत गाते हैं :

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय

भवन्ति भूयः पुण्याः गुरत्वात् । शिष्णु पुराण, 2/3/24 ।

33. देखिए अनल-प्रकाश, छठी किरण, राष्ट्र-वन्दना ।

34. देखिए अनल-प्रकाश, सातवीं किरण, राष्ट्र-वन्दना ।

अर्थात् देवता इस भारतभूमि के गुण गाते हैं और कहते हैं कि वे लोग धन्य हैं जो स्वर्ग और मोक्ष का फल प्राप्त करने के लिए अपने देवपन से मनुष्य जन्म धारण करने भारतभूमि पर आते हैं।

पुराण वेदों के ही उदाहरण-प्रधान भाष्य हैं। वेदों में राष्ट्रीय एकात्मता की जो भावना है, वही पुराणों में इतने अधिक विस्तार से समझाई गई है कि आज-कल समयाभाव आदि के बहाने उसके पठन-पाठन के प्रति उपेक्षा-भाव सा व्याप्त है। अनल-प्रकाश में पौराणिक व्याख्या का भरपूर दोहन किया गया है और पुराणों की उपेक्षा से उत्पन्न अन्तराल भरने के लिए गुप्त-बन्धुओं ने अत्यन्त सशक्त, उपयोगी और रोचक सामग्री पाठकों को दी है।

4.4 ऐतिहासिक/राजनीतिक एकता

राष्ट्र की ऐतिहासिक या राजनीतिक एकता सदा से ही भारतीय मनीषा की आकांक्षा रही है; किन्तु कभी भी निरंकुश शासन या तानाशाही पसन्द नहीं की गई। चक्रवर्ती सम्राट् का भी अभिप्राय यही था कि वह अनेक स्वायत्तशासी राजाओं के बीच समन्वय बनाए रखे। उद्देश्य यह था कि अनेक गणों का एक संघ हो जिसका मुखिया भी चुना हुआ ही हो, और वह माता-पिता के समान रक्षा करने वाला हितकारी और मित्र ही हो। वेद-वाक्य 'वृणीमहे सख्याय प्रियाय'³⁵ ही मार्गदर्शक सिद्धान्त रहा और 'राजा प्रकृति-रंजनात्' का आदर्श ही अभिप्रेत रहा; राजा भी 'भू-पति' नहीं 'भूमि-मुत्' ही रहे³⁶। अश्वमेध या राजसूय यज्ञ करके जिन महामानवों ने सारे देश को एक राजनीतिक सत्ता द्वारा बाँधने का प्रयास किया है, उनकी यशोगाथा भारतीय इतिहास में स्वर्णश्रियों में लिखी गई है, प्राचीन भारतीय वाङ्मय में बड़ी विशदता से गाई गई है, और उन प्रयामों की अत्यन्त मुखर अभिव्यक्ति की गई है। रघु-दिग्विजय, राम की बनवास-कालीन उपलब्धियाँ, युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ और कृष्ण द्वारा द्रुष्ट राजाओं के दमन के वृत्त साहित्यकारों ने रस से-लेकर गाए हैं। राम और कृष्ण केवल अयोध्या और व्रज के महापुरुष नहीं केवल उत्तर भारत की विभूति नहीं, बल्कि सारे देश के लिए ही प्रेरणा के स्रोत रहे

35. देखिए ऋग्वेद 4/41/7 (अनल-प्रकाश, वेदवाणी)।

36. देखिए अनल-प्रकाश, बृहद्राजधानी विकास, 24-25।

हैं, और आज भी हैं। आज-कल भी रामेश्वरम्, रामचन्द्रन् और राधा कृष्णन् आदि दक्षिण में गौरवपूर्ण नाम/उपनाम हैं, उसी प्रकार जैसे अंजना मीनाक्षी, बाली और हनुमान आदि उत्तर में। रामलीलाएं और कृष्ण-लीलाएं सारे देश में ही आयोजित होती हैं। उत्तर और दक्षिण मात्र दिशा-संकेत हैं, किसी अलगाव के बोधक नहीं। सुरासुर संग्राम या आर्यों और अनार्यों के बीच संघर्ष तो आदि काल से होते ही आए हैं। वे भी इस विशाल देश पर एक सत्ता स्थापित करने के प्रयासों के रूप में ही देखे जाएं तो कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

अनल-प्रकाश में भी राष्ट्रीय एकता के प्रयास विशेष रूप से उजागर किए गए हैं। पहिली किरण का आरम्भ करते हुए ही कवि सावधान करते हैं कि केन्द्र अशक्त होने से राष्ट्र नियंत्रणहीन होकर विखण्डित हो जाता है :

“ज्यों केन्द्र अशक्त हुए अनियन्त्रित होता राष्ट्र विखण्डित है।”

अनल-प्रकाश, अनल-उद्भव, 1।

ऐसी स्थिति रघुवंशी शासन का अन्त होने पर आई थी; और अनल-वंश का उदय ही राष्ट्र की रक्षा के लिए हुआ था :

“यों उदय ‘अनल’ के वंश का हुआ राष्ट्र के त्राण हित।

थे जिसके वंशज देश पर रहे होमते प्राण नित।”

अनल-प्रकाश, अनल-उद्भव, 30।

अनल-वंश के उन राजाओं का भी वर्णन है जिन्होंने दुष्ट राजाओं को लोक-कल्याणकारी शासन पद्धति अपनाने पर बाध्य किया था³⁷। अनल-वंशियों के जन-कल्याण कार्यों की भी चर्चा हुई है और भजयराव को सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माता कहा गया है³⁸। राष्ट्र-निर्माण की दिशा में इनके सुप्रसिद्ध कार्य ‘खीची-यज्ञ’ का जो अनेक राज्याध्यक्षों का एक विशाल महा-सम्मेलन³⁹ था, सबिस्तार वर्णन प्रथम किरण के उत्तरखण्ड में किया गया है जिसके फलस्वरूप अनल-वंश के (जिसे अब खीची वंश भी नाम दे दिया

37. देखिए अनल-प्रकाश, चौहान-चन्द्रिका, 9।

38. देखिए वही 24; और अनल-प्रकाश, खीची यज्ञ, 2।

39. देखिए अनल-प्रकाश, खीची यज्ञ, 43 और 48।

गया) राजा राष्ट्र-नायक⁴⁰ हुए और सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी राज्याध्यक्ष एक राष्ट्र के आग्रही⁴¹ बन गए ।

राष्ट्र-नायक होने के नाते खीचो राजा दूलाराव एक दूरस्थ राजा दाहिर का पक्ष लेकर लड़ने के लिए सिन्ध पहुँचे और आक्रमणकारी मुहम्मद-बिन-कासिम को खदेड़कर उन्होंने राष्ट्र की रक्षा की⁴² । इस संघर्ष में वे स्वयं भी खेत रहे । यवनों के लगातार आक्रमणों और उनके अनैतिक आचरण के कारण पृथ्वीराज चौहान आदि भारतीय राजाओं के धर्म-युद्ध सफल न हुए । तब भी सब राजा (अपने पूर्व-घोषित राष्ट्र-नायक) खीची-गणपति पर आशा लगाए थे, जो एक राष्ट्र का मन्त्र फूँकते रहे थे⁴³ । अन्ततः सुलतानशाही से खीची का भीषण संघर्ष हुआ । खीची-राजाओं ने 'सर्वस्व त्याग निज देश की रक्षा ही कर्तव्य' मानकर⁴⁴ लगातार तीन पीढ़ियाँ युद्ध में झोंक दीं और खेत रहे । जब धार्मिक संकट आ पड़ा तब खीची राजा पीपाजी ने सन्तों का एक दल साथ लेकर वाराणसी से द्वारिका तक धर्म-दुन्दुभी बजाई और राष्ट्र-व्यापी धार्मिक क्रान्ति की । भक्तवर पीपाजी नाभादास की भक्तमाल के सुमेरु बने । उनके प्रपौत्र अचल सिंह ने फिर दूर-पास के सब राजाओं का एक मण्डल बनाया और राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ के लिए तत्पर हुए । उन्होंने पश्चिम में मेवाड़ से और पूर्व में रोवा से सम्बन्ध स्थापित कर⁴⁵ मालवा के होशगशाह से युद्ध करते हुए अपनी आहुति दी । उनके पुत्र गजदेव सिंह ने अरगल नरेश से सम्बन्ध स्थापित कर अन्तर्वेद में अपनी साख जमा ली । वैदिक ऋषि के मन्त्र 'मा नो दुःशंस ईशत'⁴⁶ का अनुसरण करते हुए दुष्ट शासन से लोहा लिया, आततायियों का नाश किया और इस प्रकार खीचियों का एक-राष्ट्र का स्वप्न गागरीन से फैलता हुआ अन्तरवेद तक छा गया⁴⁷ ।

40. देखिए अनल-प्रकाश, खीची यज्ञ, 51 और 54 ।

41. देखिए वही 54 और 55 ।

42. देखिए अनल-प्रकाश, प्रबल प्रतिरोध, 5 ।

43. देखिए वही 30 और 31 ।

44. देखिए अनल-प्रकाश, धारू-विजय, 25 ।

45. देखिए अनल-प्रकाश, शक्ति संचयन, 8, 9 और 16 ।

46. देखिए पाद टिप्पणी 26 ।

47. देखिए अनल-प्रकाश, पाणि-ग्रहण, 30 ।

आठवीं किरण के आरम्भ में रघु, राम, गौतम बुद्ध, कृष्ण सरीखे युग-पुरुषों, एवं झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, आन्ध्र प्रदेश के काकतीय साम्राज्य की प्रसिद्ध रानी रुद्रमाम्बा, तमिल के प्रसिद्ध कवि तिरुवल्लुवर, चैतन्य महाप्रभू, गोस्वामी तुलसीदास, दक्षिण भारत की आलवार परम्परा के सन्तों आदि ने जिस धरती को माथा टेका और वीरों ने जिसपर अपने प्राण न्योछावर किए, उस प्यारे राष्ट्र की वन्दना करके⁴⁸ रचनाकारों ने विशाल भारत देश की ऐतिहासिक राष्ट्रीय एकात्मता एक बार पुनः उभारी है। देश के सामने प्रत्यक्ष हलिक बनकर उदाहरण प्रस्तुत करने वाले अद्वितीय समृद्धिकर्ता हरिकेश (उदारू) सिंह⁴⁹ के छह पुत्रों की उपमा पर-राष्ट्र-नीति की सफलता हेतु व्यवहार्य राजा के छह गुणों से दी गई है जो शुभ अवसर पाकर अविजित एक राष्ट्र का जन-जन का स्वप्न साकार करने के लिए ही मूर्तिमान हुए हैं⁵⁰।

छल से राजा भगवन्तराय के मारे जाने पर समूचे भारत ने गहरा शोक मनाया पंजाब, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, महाराष्ट्र, सह्याद्रि न जाने कितने दिन तक शोकग्रस्त रहे⁵¹। यह इसलिए नहीं कि ये सब भगवन्तराय के अधिकार में थे, बल्कि इसलिए कि भगवन्तराय राष्ट्रीय नेता थे और सर्वत्र लोक-प्रिय थे। उक्त सभी क्षेत्रों की जनता और शासक न केवल उन्हें चाहते थे, बल्कि यथासंभव उन्हें सहयोग प्रदान करते थे। सबने दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने आपको राष्ट्र के प्रति समर्पित किया⁵²। फिर जब अंग्रेजों ने व्यापार के बहाने देश में प्रवेशकर छल-कपट और विश्वासघात द्वारा अपना राज्य स्थापित करना आरंभ किया, तब खीची राजा उनसे भी सशंकित हुए। अन्तर्वेद में अंग्रेजों का घोर विरोध हुआ। खीची राजाओं का क्षेत्र असोथर जरायम-पेशा (अपराधी) लोगों का क्षेत्र घोषित हो गया। व्यापक दमन के बावजूद भी गोरिल्ला युद्ध करके वे अंग्रेजों की नाक में दम करते रहे।

48. देखिए अनल-प्रकाश, आठवीं किरण, राष्ट्र-वन्दना।

49. देखिए अनल-प्रकाश, बृहद्राजधानी विकास, 33 और 34।

50. देखिए अनल-प्रकाश, भगवन्त अवतार, 50।

51. देखिए अनल-प्रकाश, महाप्रयाण, 75 और 76।

52. देखिए बही 85।

उनके सैनिक गुप्त वेश में साधु बने हुए, अंग्रेजी छावनियों तक भी पहुंचते और सशस्त्र क्रान्ति का आधार तैयार करते रहे। राजा दुनियापति खीची जरोली के युद्ध में अलं मृट्टी और उसकी सारी सेना का संहार कर अपने साथियों सहित दक्षिण की ओर चले गए और छिपे-छिपे ही स्वयं भी तथा अपने गुरु के माध्यम से भी देश-प्रेमी नेताओं से मिलते रहे। यद्यपि 1850 ई० में उनका देहान्त हो गया, फिर भी 1857 ई० की सशस्त्र सैनिक क्रान्ति की पक्की नींव उन्होंने रख दी थी और स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा दिया था। यह देश की राजनीतिक एकता और राष्ट्र-एकात्मता का ही प्रमाण है कि उत्तर भारत में फैले इस व्यापक स्वतंत्रता संग्राम में नाना साहेब आदि दक्षिण के महत्वपूर्ण लोकनायकों ने भी अपना सारा बल लगा दिया था।

4.5 धार्मिक एकता

वैदिक ऋषियों ने धर्म का व्यापक अर्थ ही ग्रहण किया था। उनकी दृष्टि में सारे संसार के मानवों का एक ही धर्म, मानव धर्म था, जिसकी व्याख्या समय-समय पर ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, ज्ञानी-विज्ञानी कवि और मनीषी सभी करते रहे हैं। उस वेदोक्त धर्म का आचरण करने वाले स्वयं को आर्य (श्रेष्ठ) कहते थे और दूसरों को आर्य (श्रेष्ठ) बनने का मार्ग दर्शाते थे। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'⁵³ का आदर्श लेकर चलने वाले ये लोग विश्वबन्धुत्व की भावना से सराबोर होकर सारे संसार को अपना परिवार समझते थे⁵⁴। वे इसे एक घोंसले के समान⁵⁵ ही मानते थे जहाँ

53. देखिए पाद-टिप्पणी 10।

54. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् यह मेरा है, यह पराया है, यह भावना संकीर्ण हृदय वालों की है। उदार प्रकृति के लोगों के लिए तो सारी पृथ्वी ही एक कुटुम्ब है।

55. वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहासद् यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्।

तस्मिन्निवत्सं च विचैति सर्वथस ओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु।

यजुर्वेद, 32/8।

अर्थात् जिज्ञासु मनुष्य ने गुहा में निहित (दुर्ज्ञेय) सद्रूप ब्रह्म का साक्षात्कार किया जिसमें यह संसार एक घोंसले (नीड) की भांति है। यह संसार उसी ब्रह्म में लीन

कुछ देर विश्राम करके सबको अपने-अपने कर्तव्य में जुट जाना होता है। वे लोग मध्ययुगीन या वर्तमान ईसाई या इस्लाम मतों के प्रचारकों जैसे नहीं थे, बल्कि उनकी दृष्टि में मानव-जीवन का उद्देश्य ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाकर देवत्व की कोटि में पहुंचाना था⁵⁶।

आर्य और अनार्य, सुर और असुर सारे भारत में तो थे ही, पूर्व-पश्चिम की ओर भी दूर-दूर तक अनेक देशों तक फैल गए थे। पश्चिम में ईरान (आर्य→आर्यन्→ईरान) और जर्मनी (शर्मा→शर्मन्→जर्मन) विशेष रूप से आर्यों के देश थे, ऐसी बहुत से विद्वानों की मान्यता है। पूर्व में ब्रह्मदेश, श्याम जावा (यवदीप), सुमात्रा, मलाया (मलय द्वीप) वाली द्वीप तक आर्य फैले हुए थे। दक्षिण में श्रीलंका (सिंह→सिंहल द्वीप→श्रीलंका) तक में आर्य थे। भारत में तो उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक आर्यों का बाहुल्य था, उत्तर में अधिक, दक्षिण में कम। उत्तरी भाग अधिक उपजाऊ होने से अधिक घना बसा था और आर्य संस्कृति का केन्द्र भी था। यह आर्यावर्त कहलाता था⁵⁷। किन्तु आर्य संस्कृति के प्रचारक वैदिक ऋषि-मुनि दक्षिण में भी कम नहीं थे। सारे देश में ही तपोवन थे, जहाँ ऋषियों के आश्रम थे, गुरुकुल थे और आर्य संस्कृति सिखाई जाती थी। अति उत्कृष्ट आचरण होने पर मानव देवता या सुर की कोटि में आ जाता था, भूसुर (पृथ्वी पर देवतुल्य) हो जाता था।

आर्य संस्कृति सीखने की सीढ़ियों को ही संस्कार कहते हैं।

होता है और उसी से प्रादुर्भूत होता है और वह विभु सभी प्राणियों में ओत-प्रोत है।

56. विश्व-बन्धुत्व की भावना से प्रेरित हो विश्व-कल्याण के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हुए, लोक को जिस दशा में पावे, उससे अधिक समृद्ध और सुखी छोड़ जाना ही इस जीवन का उद्देश्य है। जीवन-पथ में स्वस्थ और सर्वांगीण विकास ही जीव-जगत का धर्म है। सावित्री, पृष्ठ 29 : गुप्त-बन्धु।

57. आसमुद्रात्तु वै पूर्यादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।

तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधः । मनुस्मृति, 2/22 ।

अर्थात् पूर्वी समुद्र (बंगाल का आखात) से लेकर पश्चिमी समुद्र (अरब सागर)

संस्कार होने पर व्यक्ति द्विज बन जाता था, अन्यथा शूद्र या अनाय्य ही बना रह जाता था⁵⁸ । अनाय्यों का स्वाभाविक अपकर्ष होते रहने से जब वे इतने निकृष्ट हो जाते थे कि मानव-जाति के लिए घोर आपत्तिजनक आचरण करने लगते थे, तब उनसे अपनी रक्षा करने के उपाय भी आर्यों को करने पड़ते थे । ऐसे लोग राक्षस या असुर कहे जाते थे । अनुच्छेद 3.3 में स्पष्ट किया जा चुका है कि द्रविड़, यवन, शक आदि जातियाँ पहिले क्षत्रिय थीं, बाद में धारे-धीरे संस्कारहीन होने लगीं और अनाय्य हो गईं ।

4.5.2 धर्म के नाम पर मत-मतान्तर

आर्यों से इतर आचरण वाले भारतेतरवासी लोगों ने भी अपनी-अपनी समझ के अनुसार अपनी ही सभ्यताएं और संस्कृतियाँ विकसित कीं । अपने-अपने विश्वास के अनुसार इनके अनेक मत-मतान्तर हुए जिन्हें इन्होंने 'धर्म' नाम दे लिया । उनके ये धर्म या मत व्यापक 'मानव धर्म' से अंशतः अभिन्न, किन्तु अधिकांशतः भिन्न थे । आर्यों में भी कालांतर में अनेक मत पैदा हो गए । आर्य लोग एक ईश्वर के उपासक थे; किन्तु बाद में उनमें ही वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक मत हो गए जो अपने-अपने भगवानों (देवताओं) की उपासना करने लगे । वास्तव में वैदिक ऋषियों की व्यापक और दूरदर्शी विचार-धारा आत्मसात् करने में समर्थ न होने पर लोग अपनी आंशिक अनुभूति पर निर्भर होकर ही पूर्णज्ञानी बनने का दम्भ पालने लगे । अनल-प्रकाश में यह तथ्य यों समझाया गया है कि मानो कुछ अन्धे व्यक्ति हाथी देखने गए और वे हाथों से टटोल-टटोलकर ही उसकी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करने लगे । किन्तु उनमें से प्रत्येक उस हाथी का एक-एक अंग टटोलकर उसे हाथी मान बैठा और अलग-अलग अपना निष्कर्ष बताने लगा । पेट छू पाने वाले के लिए हाथी दीवार सा, दांत छू पाने वाले के लिए डण्डे सा, पूंछ छू पाने वाले की राय

पर्यन्त दोनों पर्वतों (हिमालय और विन्ध्याचल) के बीच के देश को विद्वान लोग आर्यावर्त कहते हैं ।

58 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते ।' जन्म से सब शूद्र (अनाय्य) ही होते हैं, संस्कार से वे द्विज बनते हैं । यज्ञोपवीत संस्कार दूसरा जन्म समझा जाता है ।

में रस्सी सा, कान छू पाने वाले की राय में पंखे सा और पैर छू पाने वाले के विचार से वह खंभे सा बताया गया⁵⁹। इसी प्रकार अधिकचरा ज्ञान बधारकर अन्धों में काने राजा बने हुए अनेक सामाजिक/धार्मिक नेता लोग अपने को ही सही और दूसरे को गलत घोषित कर परस्पर लड़ने लगे⁶⁰ और सगर्व इतिहास में नाम लिखाने के लिए महन्त (साधु-सन्त का मुखिया) गाजी (काफिरों से लड़कर विजय पाने वाला मुसलमान वीर), औलिया (पहुंचा हुआ मुसलमान फकीर), धर्म-ध्वजी (धार्मिकता का पाखण्ड करने वाले) आदि बड़े-बड़े नाम अपना बैठे⁶¹।

4.5.3 मानव धर्म और भारत

वैदिक ऋषियों की यह संकल्पना कि सभी मनुष्यों का एक मानव-धर्म है, भारत में एक जैसी समादृत रही। जब-जब इसमें शिथिलता आती दीखी, मत-मतान्तरों का जोर बढ़ा, विविध सम्प्रदायों का सघर्षमय वातावरण बना, तब-तब कोई न कोई महापुरुष धर्म का वास्तविक तात्पर्य समझाने के लिए प्रकट हुआ, और उसने सारे भारत को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। राम धार्मिक नेता नहीं कहे जाते; किन्तु मानव-धर्म की उन्होंने व्यावहारिक व्याख्या अपने आचरण से सिखाई, मर्यादाएं बाँधी, उनका पालन किया, अनेक कष्ट सहकर भी; और इस प्रकार सारे देश के लिए ही नहीं; मानव मात्र के लिए मर्यादा-पुरुषोत्तम बने। बौद्ध मत और जैन मत सारे भारत में फैले। किन्तु कालान्तर में प्रत्येक अच्छी भावना भी प्रदूषित होकर हानिकर हो जाती है, और लार्ड टेनीसन के शब्दों में उसमें परिवर्तन की अपेक्षा होती है⁶²। अतः जब बौद्ध-जैन-मतों में भी दोषों का

59. देखिए अनल-प्रकाश, महाप्रयाण, 54।

60. 'ममसत्य' युद्ध का एक पर्याय है। ऋग्वेद में कहते हैं।

त्वां जना ममसत्येषु इन्द्र सन्तस्थाना विह्वयन्ते समीके। 10/42/4।

अर्थात् मेरा पक्ष सत्य है ऐसा आग्रह जहां है वहां युद्ध होता है। ऐसे प्रसंग उत्पन्न होने पर, हे इन्द्र, युद्ध में खड़े वीर तुम्हें अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं।

61. देखिए अनल-प्रकाश, महाप्रयाण, 55, 56, और 57।

62. Old order changeth yielding place to new,
Lest one good custom should corrupt the world.

Lord Tennyson.

प्रवेश हो गया, शैव, वैष्णव आदि मत परस्पर द्वेष में लिप्त हो गए, तब शंकराचार्य ने सब मतों के मूल में एकात्मता की खोज करके एक-ईश्वर के सिद्धान्त का, 'एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रचार किया। उन्होंने अपने विशाल भारत देश के चार कोनों में धर्म का वास्तविक अर्थ समझाने के लिए और वेदोक्त मानव-धर्म फिर से रोपने के लिए चार पीठ स्थापित किए: बदरिकाश्रम उत्तर में, करवोर पीठ कोल्हापुर में, द्वारिका पीठ सौराष्ट्र में और शारदा पीठ (शृंगेरी) मैसूर राज्य में। इस प्रकार सारे राष्ट्र की धार्मिक एकात्मता फिर से पुष्ट हुई। चौथी किरण⁶³ में एक राष्ट्र की भावना का यही आधार व्यक्त हुआ है।

फिर अनल-वंश के लोक-कल्याण-तत्पर और दूरदर्शी राजा भी अनल-प्रकाश के कवियों की अपेक्षाओं के अनुरूप ही थे। कुछ मतान्ध अनायों की तलवार के भय से जब लोगों का धर्म-परिवर्तन हो रहा था, तब खोची राजा पीपाजी को यह बहुत खलता था कि इस प्रकार धर्म-भ्रष्ट हुए व्यक्तियों को आर्य पुनः क्यों नहीं अपना लेते⁶⁴। अन्ततः एक दिन वे धार्मिक क्रान्ति के लिए निकल पड़े और सन्त रामानन्द को उनके शिष्यों सहित वाराणसी से लेकर सर्वत्र मानव-धर्म का डका बजाते हुए द्वारिका तक पहुंचे। आततायियों द्वारा धर्म-च्युत किए हुए व्यक्तियों के विषय में उन्होंने गंजना करते हुए कहा कि धर्म ही मनुष्य की विशेषता है जिसके कारण वह पशुओं से भिन्न है। यदि भूल से या भय से किस धर्म छूट जाए तो उसके साथियों को चाहिए कि शीघ्र प्रायश्चित्त करवाकर उसे अपना लें⁶⁵।

4.5.4 इस्लाम और भारत का धर्म

अरब के लोग समुद्री मार्ग से भारत से व्यापार करते थे। यवन-आक्रान्ताओं का आतंक फैलने से पहिले ही भारत में इस्लाम मत का प्रवेश हो चुका था। इस्लाम (=स्वीकार करना, ईश्वरेच्छा के सामने सिर झुका देना) मत के मानने वाले मुसलमान कहलाते थे और एक ईश्वर

63. देखिए अनल-प्रकाश, चौथी किरण, राष्ट्र-वन्दना।

64. देखिए अनुच्छेद 2.3 और पाद-टिप्पणी 9,

65. देखिए अनल-प्रकाश, महाभिनिष्क्रमण, 18, 19 और 20।

के उपासक होते थे। अतः भारत की संस्कृति से वे प्रभावित भी हो चुके थे। यहाँ पुनः जोर देकर कहना है कि म्लेच्छ, असुर आदि संबोधन उन आततायियों के लिए प्रयुक्त किए गए हैं जो मानव-धर्म के प्रतिकूल आचरण करते थे, जैसा अनुच्छेद 2.6 में स्पष्ट किया जा चुका है।

एकेश्वरवाद से प्रभावित कबीर सन्त रामानन्द के शिष्य बन गए थे। वे कहते थे, 'ना मैं हिन्दू ना मुसलमाना...'। अब्दुरहीम खानखाना राम और कृष्ण के भक्त हो चुके थे। रसखान, जायसी, आलम, सालबेग, कैफी आदि और भी बहुत से मुसलमान कवियों ने भक्तिमार्ग अपनाकर जन्म सार्थक किया था, जिनके लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है 'इन मुसलमान हरि-जनन पै कोटिक हिन्दू वारिए'। एक मुसलमान कवियत्री 'ताज' ने तो यहां तक कहा था 'हैं तो मुगलानी, हिन्दुवानी हूँ रहौंगी'। मुगल सम्राट हुमायूँ ने चित्तौड़ की महारानी कर्मवती द्वारा भेजी हुई राखी का आदर करके उस मुंहबोली बहिन के सम्मान की रक्षा के लिए गुजरात के बादशाह बहादुर शाह से युद्ध किया था⁶⁶। सम्राट् अकबर ने 'राम-सिया' के चित्र छपाकर सोने-चांदी के सिक्के प्रचलित किए थे⁶⁷।

4.5.5 विविधता का शतदल

भारत में आकर मुसलमान भी उसी प्रकार घुल-मिल गए थे, जिस प्रकार किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कास, आभीर, कंक, यवन और खश आदि⁶⁸। ये सब जातियाँ देश भर में जगह-जगह बिखरी हैं, और

66. देखिए अनल-प्रकाश, क्रान्ति-रेखण 19।

67. देखिए - वही - 21। और भी :

डा० भगवती प्रसाद सिंह अपनी 'राम-काव्य धारा : अनुसन्धान एवं अनुचिन्तन' में लिखते हैं कि सम्राट् अकबर ने सन् 1605 ई० में चांदी की एक अठन्नी चलाई थी, जिसपर सीता-राम का चित्र है और ऊपर नागरी में 'राम-सीय' लिखा है। ऐसी एक अठन्नी भारत कला भवन वाराणसी में है। ऐसी ही सोने की दो अर्द्ध मोहरें भी, एक कैबिनेट डे फ्रांस में और दूसरी ब्रिटिश म्यूजियम में संगृहीत हैं।

68. किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुक्कासाभीर कंका यवनाः खशादयः।

येऽन्ये च पापा यवपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।

अज्ञात।

भारतीय हो गई हैं। प्राचीन काल में शक द्वीप (मध्य एशिया) में रहने वाली एक समृद्ध जाति भारत आई थी जिसकी उत्पत्ति पुराणों में वर्णित सूर्यवंशी राजा वरिष्यन्त से मानी जाती है। ये अपने को देवपुत्र कहते थे। 200 ई० पूर्व भारत के मथुरा और महाराष्ट्र प्रदेशों पर उस जाति का शासन 190 वर्ष तक रहा। प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क इसी (शक) जाति के थे। हूण लोगों ने भी भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर कई बार आक्रमण किया था और एक बार इन्हें विक्रमादित्य ने भी हराया था। इस प्रकार अनेक जातियाँ भारत में आकर ऐसी घुल-मिल जाती रहीं कि वे पूर्णतया भारतीय ही बन गईं। इसी विविधता के आधार पर तीसरी किरण की राष्ट्र-वन्दना में कवि भारत को एक मात्र वैविध्य-शतदल बताते हैं।

वैविध्य-शतदल विश्व-मानस एक मात्र खिला सका ;
रचि-पचि उसे ही विश्वकर्मा अद्वितीय बना सका ;
जिसपर उतर प्रभु लोक-रंजन, धर्म-संस्थापन करें ;
हम मातु-पितु-गुरु-तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें ।

यहां लोक-रंजन से संकेत श्रीराम की ओर और धर्म-संस्थापन से संकेत श्रीकृष्ण की ओर है, दोनों ही प्रभु के अत्यन्त लोकप्रिय अवतार माने जाते हैं जिन्होंने उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक सारे देश को एक-राष्ट्र की डोर में बांधा था, यद्यपि उन अवतारी महापुरुषों की स्वयं राज्य करने की कोई मंशा नहीं थी। देश भर में विविधताएँ तब भी थीं और अब भी हैं; और सैकड़ों विविधताओं के रहते हुए भी सौ दल वाले कमल की भांति यह देश एक-राष्ट्र बना हुआ विश्व में अद्वितीय रहता रहा है।

अर्थात् जिस पवित्र भूमि का आश्रय लेकर किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुषकास, आभीर, कंक, यवन, खषा इत्यादि अनायें और पापी लोग शुद्ध होकर आर्य (श्रेष्ठ) हो जाते हैं, उस प्रभावशाली भूमि को नमस्कार है। और भी :

आभीर जमन किरात खस स्वपञ्चादि अति अधरूप जे ।
फहि नाम बारक लेपि पावन होहि राम नमामि ते ।

रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड 130 : तुलसीदास ।

4.5.6 राष्ट्र-व्यापी धार्मिक एकता

ऊपर (अनुच्छेद 4.5.3 में) वर्णित चार शांकर पीठ ही नहीं अनुच्छेद 4.3 में वर्णित सप्तपुरियां, चार धाम और द्वादश ज्योतिर्लिंग सारे देश में फैले हुए हैं, जो राष्ट्र-व्यापी धार्मिक एकात्मता का प्रमाण हैं। इस प्रकार व्यापक मानव-धर्म की दृष्टि से भी यह विशाल भारत एक और मात्र एक राष्ट्र है जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी और विभिन्न मतों-धर्मों के मानने वाले एक साथ मिलकर रहते हैं मानो एक ही घर में रहते हैं; और धार्मिक एकात्मता की यह भावना हमारे वैदिक ऋषियों की देन है⁶⁹। वैदिक युग से अब तक यह भावना देश भर में फैली हुई लगातार चली आ रही है। दशहरा, दीवाली, होली, वैशाखी, रक्षा-बन्धन, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि पर्व (और इसी प्रकार अब ईद और मुहर्रम भी) सारे देश में उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक एक जैसे उत्साह से राष्ट्रीय पर्वों के समान मनाए जाते हैं। अंग्रेजों की भेद-नीति जनता में सफल होने के पहिले (इस शताब्दी के दूसरे दशक तक) मुसलमानों के त्योहारों में हिन्दू और हिन्दुओं के त्योहारों में मुसलमान बिना किसी भेद-भाव के सोत्साह सम्मिलित हुआ करते थे।

संस्कृत के पठन-पाठन और प्राचीन वाङ्मय से जनता को अनभिज्ञ रखकर और अंग्रेजी के माध्यम से ही जैसा चाहा वैसा, अपनी मरजी का ज्ञान (या मिथ्या ज्ञान⁷⁰) प्रस्तुत कर शासक सत्ता ने अलगाव और द्विराष्ट्र-/त्रिराष्ट्र-सिद्धान्त हमारे मस्तिष्क में ठूसने का प्रयास किया था। अनल-

69. जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥

अथर्ववेद 12/1/45 ।

अर्थात् अनेक प्रकार के विविध प्रकार की वाणियां बोलने वाले और अनेक प्रकार के धर्मों (कर्तव्यों) का पालन करने वाले लोगों की समान (एक साथ) घर में रहने वालों की भांति धारण करती हुई हमारी मातृभूमि ध्रुव के समान बिना हिले-डुले, स्थिर खड़ी हुई दुधारु गाय की भांति मेरे लिए धन की हजारों धाराएं प्रदान करे।

70. देखिए अनुच्छेद 2.4 ।

प्रकाश के रचयिताओं ने जन-मानस खँगालकर उस मिथ्या ज्ञान को पूरी तरह निकालने का और सारे भारत की राष्ट्रीय एकात्मता की प्रसुप्त भावना पुनः जगाने का सफल प्रयास किया है। वास्तव में रचना में बार-बार डुबकी लगाने का मन करता है और प्रत्येक डुबकी में एक-राष्ट्र-संगीत की मधुर गूँज ही आद्यन्त कानों में सुनाई देती है।

5. अनल-प्रकाश : एक परिचय

मुगल सम्राट् अकबर के ज़माने में मपाराणा प्रताप सिंह ने अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए सम्राट् से लोहा लिया था। उनका वंश सीसौदिया कहलाता था। औरंगज़ेब के ज़माने में भी क्षत्रपति शिवाजी ने सम्राट् को नाकों चने चबवाए थे और मराठों का प्रभाव दक्षिण से धुर उत्तर, गढ़वाल राज्य तक फैला था। आधुनिक इतिहास में देश के इन स्वातन्त्र्य-प्रेमी वीरों की वंशावलियों में एक-दो पीढ़ी को छोड़कर शेष के बारे में प्रायः कुछ भी नहीं मिलता। किन्तु इनके अतिरिक्त एक और वंश भी भारत में हुआ है, जिसका इतिहास पीढ़ी-दर पीढ़ी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष की अग्नि से तपा है। प्राचीन सूर्यवंश या चन्द्र वंश की भाँति यह 'अनल वंश' या 'अग्नि वंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कृतिकारों ने इस वंश की गौरव-गाथा लिपिबद्ध करते हुए 'अनल-प्रकाश' नाम के प्रस्तुत महाकाव्य की रचना की है। इसकी पूर्व-पीठिका में उन स्रोतों का उल्लेख किया गया है जहाँ से विशेष आधार-सामग्री मिली है। पूर्व-पीठिका के बाद प्रकाश की क्रमशः आठ किरणें आती हैं। प्रत्येक किरण के तीन-तीन खण्ड हैं : पूर्व खण्ड मध्य, खण्ड और उत्तर खण्ड। अन्त में उत्तर-पीठिका में ग्रंथ का उपसंहार है।

5.2 प्रथम किरण : खीची चौहान

इस किरण में तीन खण्ड हैं : अनल-उद्भव, चौहान-चन्द्रिका और खीची-यज्ञ।

त्रेता युग में सूर्यवंश के विख्यात रघुवंशी शासन की समाप्ति के पश्चात् इस अनल वंश का उद्भव अग्नि या यज्ञ से माना जाता है। उस समय दो राक्षस, धुन्धकेतु और धूमकेतु अपना आतंक फैला रहे थे। चारों ओर देश में अराजकता फैली हुई थी। अतः राजस्थान के अरावली पर्वत पर, जहाँ वशिष्ठ मुनि का आश्रम था (और अभी भी है) एक विशाल यज्ञ आयोजित किया गया था। गंभीर विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुए

ऋषि मुनियों, विद्वानों, विचारकों और वीरों का यह एक महासम्मेलन ही था, जिसके फलस्वरूप चार वीर आगे बढ़े । इनके नाम थे, अनलराव, वीरवर, दुर्जनांकुश और कुंचलदेव । ये ही क्रम से चौहान, परमार, सोलंकी और परिहार वंशों के प्रथम पुरुष हुए । इन सबने मिलकर राक्षसों का नाश किया । तदनन्तर अनलराव माँडवार में, वीरवर उज्जैन में, और दुर्जनांकुश गुजरात में बस गए, और कुंचलदेव आबू (अरावली) पर्वत पर चले गए ।

अनलराव के नाम पर इनके वंश का नाम अनल वंश पड़ा । यज्ञ के अवसर पर (यज्ञ से) प्रकाश में आने के कारण भी वंश का नाम अग्निवंश या अनल वंश पड़ा । यज्ञ में अनलराव हाथ में चाप (धनुष) धारण किए हुए ही प्रकट हुए थे, अतः ये 'चापुहान' या 'चौहान' कहलाए । अनेक यज्ञ करके अनलराव ने अपने पुत्र अनुजराव को राज्य सौंपा और स्वयं सन्यास धारण कर लिया । अनुजराव के पुत्र अजयपाल सिंह और तदनन्तर काल-क्रम से माद्र राजा बने, जिनकी पुत्री माद्री हस्तिनापुर के राजा पाण्डु को ब्याही गई । माद्र के ही पुत्र शल्य ने महाभारत में एक दिन दुर्योधन के सेनापतित्व का भार संभाला और अपने भानजे युधिष्ठिर के हाथों वीर-मति पाई ।

शल्य के पुत्र शंकर, उनके पुत्र राव बरदायी, उनके पुत्र अतिशूल, उनके पुत्र कर्ण सिंह और तदनन्तर मदनशूल, धूमदराव और माधव सिंह क्रम से राजा हुए । इनके बाद क्रम से महारूप, नगराव, सिंहराव, मतिराव बालसीराव, कुलपति राव, योगराव, मणिकराव और संभरिराव अथवा लाखन सिंह सभर हुए । लाखन सिंह ने संभर शील बनवाई और उसके तट पर संभरपुर नाम की नगरी बसाई । लाखन सिंह के चौबीस पुत्र हुए जिन्होंने यवनों के आक्रमण का वीरता पूर्वक सामना किया । इनमें से पन्द्रह का वंश नहीं चला; शेष नौ पुत्रों की नौ कुरियां बनीं । इन्हींके वंश में पृथ्वीराज चौहान हुए जिन्होंने मुहम्मद गौरी से युद्ध किए थे ।

लाखन सिंह के दूसरे पुत्र अजयराव ने एक विशाल राज्य स्थापित किया । सुव्यवस्था के कारण यह राज्य अत्यन्त समृद्ध हुआ । एक बार भोजन अवकाश पड़ा तब अन्य राज्यों की तो बुरी दशा हो गई, किन्तु अजयराव का राज्य सुप्रबन्ध के कारण धन-धान्य-सम्पन्न बना रहा ।

विदेशियों की लोलुप आँखें देश की ओर लगी थीं, ऐसा आभास पाकर अजयराव ने आस-पास के सभी राज्यों का एक मास का एक विशाल सम्मेलन किया। माघ के महीने में यह सम्मेलन करके सभी राज्यों की पीड़ित प्रजा को आश्रय दिया और सबको राज्य को ओर से घी-खिचड़ी के भोजन की व्यवस्था की गई। खीची (खिचड़ी) यज्ञ नाम से प्रसिद्ध इस सम्मेलन में अजयराव को राष्ट्र का नेतृत्व सौंपा गया, राजधानी खेलची-पुर (या खिलचीपुर किंवा खीचीपुर) कहलाई, और अजयराव के वंशज खीची चौहान नाम से प्रसिद्ध हुए।

5.3 द्वितीय किरण : धीरे धारू

इस किरण के खण्ड हैं, प्रबल प्रतिरोध, धारू-विजय और पुत्र-शोक।

सं. 741 वि. में अरब के खलीफा के सरदार मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध के राजा दाहिर की सहायता के लिए अजयराव के पुत्र दूलाराव युद्ध में पहुँचे। यवन आक्रान्ता को तो उन्होंने बापस खदेड़ दिया, किन्तु स्वयं खीची राजा इस युद्ध में खेत रहे। प्रबल प्रतिरोध के कारण लगभग 300 वर्ष तक फिर शत्रु को आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ।

कालान्तर में देश में युग-परिवर्तन आरम्भ हुआ और यवन आक्रान्ता धीरे-धीरे पंजाब पार करके दिल्ली तक फैल गए। लूट-मार, सामूहिक हत्या, बलात्कार आदि के सामने धर्म-युद्ध करने वाले भारतीय असहाय हो रहे थे। मूर्ति-भंजक महमूद गजनवी सोमनाथ तक की धरती रौंद-कर काफिले के काफिले धन-रत्न आदि से लादकर गजनी ले गया।

भारत में सुलतानशाही का दौर-दौरा हुआ। जलालुद्दीन खिलजी ने अपने भतीजे अलाउद्दीन को पूर्व की ओर विजय करने भेजा। वह विजय प्राप्त करके लौट रहा था उसका चाचा उसकी अगवानी के लिए चलकर कड़ा (जिला इलाहाबाद) पहुँचा किन्तु वहीं भतीजे अलाउद्दीन ने अपने बूढ़े चाचा की हत्या कर दी और शासन स्वयं हथिया लिया। उसने चाचा के वच्चों की भी आँखें निकलवा लीं। उस समय खीची राजा रत्न सिंह अपने अनुज जैत सिंह की सहायता से गागरौन में शासन कर रहे थे। उन्होंने अन्यायी और अत्याचारी खिलजी सम्राट् से संघर्ष ठान लिया।

किन्तु युद्ध में स्वयं खेत रहे । उनके पुत्र धारू सिंह ने संघर्ष जारी रखा । युद्ध में धारू सिंह की विजय तो हुई, किन्तु उनके पुत्र, राजकुमार गंगुल ने वीरगति प्राप्त की ।

धारू सिंह को पितृ-शोक के तुरन्त बाद ही यह पुत्र-शोक बहुत ही खला । वे मन में सोचते रहे कि यदि राजा के जीवन में युद्ध अनिवार्य है तो युद्धों में तो श्रेष्ठ वीर पुरुष ही काम आते हैं, बल्कि मृत्यु का वरण करने के लिए विवश रहते हैं । इस प्रकार राजा का काम पापमय होता है । शायद इसीलिए किसी व्यक्ति की असमय मृत्यु के लिए राजा दोषी या पापमय माना जाता है । तरुण पुत्र की मृत्यु पिता के पापों के कारण ही होती है, ऐसी भी मान्यता है । इसलिए हर तरह से राजकुमार गंगुल की मृत्यु के लिए स्वयं अपने को ही दोषी मानकर राजा बहुत ही उदास और दुखी हुए; यहाँ तक कि वे अपना ही मृत्यु की कामना करने लगे । 'पुत्र-शोक' नामक यह सारा ही खण्ड नियति के प्रति असहायता, निर्वेद, और करुणा के भार से संपीडित है, दुख के ताप से विगलित है । मन में केवल यही सन्तोष करके उन्होंने धर्म धारण किया कि उनके पिता और पुत्र दोनों का बालदान भारत-माता की मुक्ति के लिए हुआ है, जिससे वे अमर हो गए हैं । लाभ-हानि, जावन-मरण, यश-अपयश सभी संसार के द्वन्द्व हैं जिन्हें स्थिर-मति होकर सहन करना चाहिए और धर्म धारण करना चाहिए । इनसे विचलित होना उचित नहीं है ।

5.4. तीसरी किरण : विल्लीश प्रतिक्रिया

इस किरण के खण्ड है : प्रतिशोध, धारू-स्वर्गारोहण, और धर्म-संकट ।

अपनी पराजय से क्षुब्ध अलाउद्दीन रातों-रात अति विशाल बाहिनी लेकर गांगरीन पर चढ़ घाया । भीषण संग्राम हुआ । धारू सिंह ने साक्षात् बाल का रूप धारण कर लिया । पिछले दो दिन के युद्ध से अत्यन्त क्रुद्ध और उसमें पिता एवं पुत्र की मृत्यु से अत्यन्त क्षुब्ध राजा धारू सिंह ने अपने नागर सैनिक भी बुलवा लिए और शत्रुओं के दौड़ खट्टे कर दिए । धारू-खिलजी युद्ध की उपमा धारू-खिलजी युद्ध ही थी । बार क्रुद्ध सौपों की भाँति गुत्थमगुत्था होकर लड़ रहे थे । असंख्य अरि-बाहिनी समाप्त होने में न आई और धारू सिंह खेत रहे । इस युद्ध में यवनों की क्षति भी इतनी अधिक हुई कि मजबूर होकर अलाउद्दीन ने सन्धि का प्रस्ताव भेज दिया ।

इधर धारू सिंह के स्वर्गरोहण के बाद उनके चाचा जैत सिंह को शासन का भार सौंपा गया। इस प्रकार उन्होंने मानो अलाउद्दीन को यह याद दिलाया कि वे उससे डरते नहीं (अलाउद्दीन ने अपने चाचा को कत्ल करके राज्य हथिया लिया था, किन्तु गागरीन ने चाचाजी को ही आदर सहित राज्य समर्पित कर दिया)। जैत सिंह ने सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार तो कर लिया, किन्तु शत्रुओं की ओर से सदा सतर्क बने रहे, क्योंकि तब तक तुर्क लोग विश्वासघाती प्रसिद्ध हो चुके थे। इसी अलाउद्दीन ने ही तो चित्तौड़ के राजा रत्न सिंह को धोखा देकर, उनकी रानी पद्मिनी को प्राप्त करने के इरादे से, कैद कर लिया था और बाद में गोरा तथा बादल आदि वीरों ने उन्हें मुक्त कराया था।

धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति नष्ट करने के उद्देश्य से यवनों ने शिक्षा के क्षेत्र में आक्रमण आरम्भ कर दिया। फ़ारसी पढ़ाई जाने लगी और शिक्षित समुदाय भी विधर्मियों की जय-जयकार करने लगा। धर्मान्तरण बड़े जोरों से आरम्भ हुआ। सिन्ध में वीर झूलेलाल ने धर्मान्तरण का विरोध किया। उसने धर्मच्युत हुए हिन्दुओं को फिर से स्वधर्म में दीक्षित किया। जैत सिंह के बाद साहं सिंह, और फिर उनके पुत्र यशवन्त सिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने यवन बादशाहों का ध्यान इस अनीतिपूर्ण धर्मान्तरण की ओर आकर्षित किया, किन्तु कोई फल न निकला। यशवन्त सिंह के पुत्र कडुवोराव बड़े भगवद्भक्त थे। उन्हें यह विचार नित्य सालता रहता था कि एक बार धर्म-च्युत हुए हिन्दुओं को पुनः आर्य धर्म ग्रहण करने पर ब्राह्मण लोग अपनाते नहीं थे। भारत में शक, हूण आदि कितने ही विदेशी आ-आकर भारतीय बन गए थे। किन्तु इन विधर्मियों ने दस्युता नहीं छोड़ी, मानव-धर्म नहीं सीखा, बल्कि यहां के ही आर्य धर्म मानने वालों को छल-कपट से धर्म-भ्रष्ट कर रहे थे, और शिक्षा देने के लिए उत्तरदायी ब्राह्मण लोग अविद्या-अन्धकार में फँसे हुए अपने ही भाइयों को पुनः स्वीकार करने से इनकार कर रहे थे, बल्कि उलटे वे अनार्यों की ही जय बोलते थे।

5. 5. चौथी किरण : सवधर्म-दुग्धुभि

इसके तीन खण्ड हैं, मार्गान्वेषण, गृहाभिनिष्क्रमण, और शक्ति-सचयन।

कडुवोराव के विचार उनके पुत्र पीपाजी पर पूरी तरह प्रतिफलित

हुए । पीपाजी ने अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर वाराणसी जाकर सन्त रामानन्द को सहमत कर लिया और कालान्तर में उन्हें लेकर साधु-वेश धरकर वे द्वारिका धाम पहुँचे, और वहाँ दिग्गज पण्डितों से शास्त्रार्थ करके आर्य-संस्कृति का उद्धार किया । सन्त रामानन्द के शिष्यों—कबीर धना, रैदास आदि चालीस प्रसिद्ध संतों का दल उनके साथ था । कुछ दिन द्वारिका में रहकर उन्होंने वहाँ 'हरी' की छाप प्रचलित की जिसे सभी लोग गर्व से ग्रहण करते थे । इसके लिए किसी जाति या समाज का बन्धन नहीं रखा । इसके बाद जब वे वापस लौटने लगे तब मार्ग में उन्हें एक यवन मिला जिसे उनके एक विरोधी ब्राह्मण ने भेजा था । वह यवन इनकी पत्नी सीता को हर ले गया । किन्तु सीता क्षत्राणी थीं और शस्त्र-सज्जित रहा करती थीं । आगे चलकर एक सिंह मिला जिसका आक्रमण वह यवन न झेल सका और मारा गया । सीता पीपाजी को पुनः मिल गईं । उनका विश्वास था कि साधु बनने से साधुता तो सुलभ है, किन्तु असाधुओं का भय फिर भी बना रहता है, क्योंकि ब्रह्मचर्चाएँ दुष्टों से रक्षा नहीं कर सकतीं । उनसे तो शाठ्यरोधी शस्त्र ही बचा सकते हैं । अन्ततः पीपाजी वापस गागरीन लौटे और अपने पुत्र कल्याण सिंह को राज्य सौंपकर धर्म-प्रचार के लिए निकल पड़े ।

कल्याण सिंह के पुत्र भोज सिंह और उनके पुत्र अचल सिंह हुए । अचल सिंह ने अनेक राजाओं का सहयोग प्राप्त किया । मेवाड़ के राजा मोकल जी ने अपनी कन्या लालवाई उन्हें ब्याह दी और यवनों के आक्रमण रोकने में उन्हें सहायता देने का वचन दिया । रोवा के बघेला राजा ने भी अपनी कन्या उन्हें ब्याह दी । इस प्रकार पूर्व-पश्चिम का सहयोग प्राप्त कर अचल सिंह ने यवनों से संघर्ष किया । मालव देश के सूबेदार होशंगशाह ने अचल सिंह पर आक्रमण किया तब मोकल देव उनकी सहायता के लिए चले । किन्तु उनके साथ दो सरदार 'चाचा' और 'मेरा' भी चल दिए और उन्होंने रास्ते में विषवासघात करके एक रात सबको तलवार के घाट उतार दिया । अन्ततः होशंग विजयी हुआ और अचल सिंह युद्ध में खेत रहे । अपने नहरवालों के विषवासघात से परम दुखी रानी लालवाई ने योगाग्नि में अपनी आहुति देकर ही प्रायश्चित्त किया । वह योग द्वारा प्राण-वायु को ऊपर खींचकर निर्जीव हो गईं और अचल सिंह के

साथ ही उसी चिता में सती हो गईं। छोटी रानी गर्भिणी थीं, अतः वह अपने भाई के पास रीवा चली गईं। वहीं समय पर गजसिंह देव का जन्म हुआ।

5.6 पाँचवीं किरण : भागीरथी

इस किरण में गंगा-योजना, भगीरथ-तपस्या और भागीरथी-अवतरण नामक तीन खण्ड हैं।

गजसिंह देव अपनी धर्म-प्राण माता की इच्छा का आदर करते हुए सं० 1514 वि० में एक सौ साथियों के साथ उन्हें त्रिवेणी स्नान कराने ले चले। लम्बे रास्ते में राज-पुरोहित, रात को जहाँ भी पड़ाव होता, गंगा-अवतरण की कथा सुनाया करता था।

हिमालय पर्वत और विन्ध्याचल के बीच में एक राज्य था जिसकी राजधानी अयोध्या थी। राजा सगर उसके चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनकी एक रानी केशिनी का पुत्र असमंजस तो दुष्ट था, किन्तु पौत्र अंशुमान बहुत ही योग्य और सर्व-गुण सम्पन्न था। दूसरी रानी सुमति के कोई सन्तान न थी; किन्तु वह राजा की आयोजन-सचिव थी और एक बहु-उद्देशीय दल उसने अपनी योजनाएँ कार्यान्वित करने के लिए बना रखा था। दल के सभी 60,000 योद्धा बहुत बलिष्ठ थे, जिन्हें रानी अपने औरस पुत्रों के समान ही प्यार करती थीं। एक बार राज्य में अकाल पड़ा। बादल आते थे और पछुवा हवा में उड़ जाया करते थे। रानी का दल पानी की खोज में जगह-जगह खुदाई करता रहा; किन्तु कहीं पानी न मिला, बल्कि वे सारे दल-जन भी प्यासे मर गए। उन्होंने स्थानीय कपिल मुनि की, जो क्षेत्रज्ञ (स्थानीय सारी जानकारी रखने वाले) थे, बात न मानी थी, और नष्ट हो गए थे। उधर राजा सगर ने खोजी भेजे, किन्तु कुछ पता न लगा। अंत में वे अंशुमान को राज्य देकर स्वर्ग सिधार गए। अंशुमान दल का पता लगाते हुए कपिल मुनि से मिले, जिन्होंने बताया कि यह अनावृष्टि का प्रकोप तो होता ही रहेगा, समस्या का वास्तविक हल तो यही है कि हिमालय से पानी लाया जाए। इसकी सिद्धि भी राज्य के प्रयास से ही हो सकती है। फलस्वरूप राजा ने पर्वत से उतारकर पानी धरती पर लाने की योजना बनाई।

अंशुमान के बड़े-बड़े इंजीनियर और वैज्ञानिक योजना कार्यान्वित

करने में लग गए। अनाप-शनाप खर्च होने लगा किन्तु फल कुछ भी न दिखाई दिया अंशुमान के बाद दिलीप राजा हुए किन्तु वे रोगी रहते थे। और अधिक श्रम न कर सकते थे। उनके देहान्त के पश्चात् उनके पुत्र भगीरथ स्वयं पर्वतों पर जाकर काम कराने लगे। घोर परिश्रम से उनका शरीर क्षीण हो रहा था। किन्तु अन्त में अपार जल-समूह वाले क्षेत्र के स्वामी ब्रह्मा प्रसन्न हुए और जल देने को तैयार हुए। किन्तु ऊंचाई से जल जहां गिरना था, वह स्थान गहरे गह्वरों और घने वनों से भरा था। इस क्षेत्र के स्वामी शिव थे। उन्हें भी राजा ने प्रसन्न कर लिया और वे भी कार्य-भार लेने को तैयार हो गए। उनके गण अपने क्षेत्र के भीतर के सभी मार्ग और दुर्गम स्थान भली-भांति जानते थे। देवता लोग अयोध्या के राजा की सहायता के लिए तुरन्त ही तैयार हो गए क्योंकि उन्हें भी राजा की सहायता की आवश्यकता पड़ती रहती थी।

अन्ततः ब्रह्मा ने स्वस्ति-वाचन करते हुए अपने कमण्डलु से जल छोड़ा तो एक सुरंग फटी और शिला-खण्ड टूट गया। गगन-चुम्बी पर्वत की ऊंचाई से जल की धारा नीचे गिरीश (हिमालय) की जटाओं (वनों) में गिरकर खो गई। वहां से एक छोटी सी धार शिवजी ने भगीरथ के लिए मुक्त कर दी। यही धार गंगा या भागीरथी कहलाई जो कई पीढ़ियों की कठोर तपस्या के फलस्वरूप धरती पर आई है। इस प्रकार भागीरथी की कथा सुनकर सबके मन में यह विचार भली-भांति बैठ गया कि बड़ा से बड़ा काम भी लगातार प्रयास करते रहने से समय पर पूरा हो सकता है। अतः अपने पूर्वजों के संकल्प पूरे करने में आने वाली कठिनाइयों के आगे हिम्मत न हारनी चाहिए।

5.7 छठी किरण : माणिक-परिणय

छठी किरण में तीन खण्ड त्रिवेणी-स्नान, खीचीवर-परिचय और पाणि-ग्रहण हैं।

गजसिंह अपनी माता के साथ संगम-स्नान के लिए प्रयाग पहुंचे। गंगा-स्नान के ही उद्देश्य से वहाँ अरगल की रानी भी पहुँची थीं, जिन्हें कड़ा के नवाब के सिपाहियों ने घेरकर परेशान करना चाहा। रानी को ऐसे मौके बहुधा पड़ा करते थे। इसलिए सुरक्षा के लिए उनके साथ प्रायः सशस्त्र महिला-दल चला करता था। एक बार गंगा-स्नान करके लौटते

समय गुनीर (जिला फतेहपुर, उत्तर प्रदेश) के निकट अवध के नवाब ने उनपर बुरी दृष्टि डाली थी। तब रानी ने अपनी दासियों और सखियों की सहायता से उन्हें मार भगाया था। तब से रानी अपने साथ सशस्त्र सैनिक-दल भी लेकर चलने लगी थीं। किन्तु कड़ा का यवन-दल फिर भी भारी पड़ रहा था। इसलिए रानी ने अपनी रक्षा के लिए डुगडुगी पिटवा दी कि यदि कहीं कोई क्षत्रिय हो तो क्षत्राणी की अविलम्ब रक्षा करे। फल-स्वरूप गज सिंह आगे आए और उनके वीर साथियों की सहायता पाकर अरगल के सैनिकों ने यवनों को मार भगाया। अरगल की रानी को ससम्मान घर पहुंचाने के लिए गज सिंह और उनके साथी भी साथ गए।

अरगल के गौतम राजा हरपालदेव सिंह ने गज सिंह का यथोचित सम्मान किया और अपनी बेटी माणिक देवी उन्हें ब्याह दी। पाणि-ग्रहण का बहुत सुन्दर वर्णन उत्तर खण्ड में किया गया है। दहेज में ऐझीगढ़ और चौरासी ग्राम मिले और गज सिंह ऐझी (जिला फतेहपुर, उत्तर प्रदेश) में ही बस गए। अरगल-नरेश के माध्यम से उनका अनेक राजाओं से सम्पर्क हुआ और खीची राजाओं का एक-राष्ट्र का स्वप्न गागरीन से अन्तर्वेद तक फैल गया। सभी नरेश दस्यु-शासन से मातृ-भूमि का उद्धार करने के लिए मिलकर प्रयास करने के लिए वचन-बद्ध हुए। बाद में गज सिंह अपने पुत्र जय सिंह देव को शासन-भार सौंपकर स्वयं गागरीन चले गए।

5.8 सातवीं किरण : असोथर-पुनरुद्धार

इसके तीन खण्ड मृगया-विहार, द्रोणि-दर्शन और बृहद्राजधानी-विकास हैं।

जय सिंह देव के पुत्र पारुहनदेव एक बार उत्तर की ओर शिकार खेलने गए। बापसी में अश्वत्थामापुर (वर्तमान असोथर) के तपोवन में बनी द्रोण-कुटीर में उन्होंने रात बिताई, वहां रहने वाले सिद्ध यती से अपनी समस्याओं पर बार्ता की और उपदेश ग्रहण किया। प्रातःकाल स्वप्न में उन्हें द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के दर्शन हुए, जिन्होंने अश्वत्थामापुर के पुनरुद्धार की प्रेरणा दी। यहाँ महाभारतकालीन बस्ती अश्वत्थामापुर का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। राजधानी बदलने का विचार लिए हुए वे ऐझी लौटे। बाद में ब्राह्मणों से कुछ मतभेद हो जाने के कारण, जिसपर श्रीधर

पुरोहित ने अपनी बलि दे दी, उन्हें स्थान-त्याग करना पड़ा और उनके पुत्र साहबदेव का पालन-पोषण अरगल में हुआ। साहबदेव ने लौटकर असोथर-पुनरुद्धार की महत्वाकांक्षी योजना तैयार की। इसके अनुसार सारा राज्य ही एक वृहत् राजधानी के रूप में विकसित हुआ।

उत्तर खण्ड में आदर्श राजधानी का वर्णन है। इसकी ऐसी महत्वाकांक्षी योजना बनी जो कई पीढ़ियों में पूरी हुई। वैदिक ऋषियों की कल्पना थी कि राजा माता-पिता के समान सर्वत्र सुलभ हो और सखा के समान हितकामी हो। इसलिए वृहद्राजधानी का ऐसा विकास किया गया कि राजारंक का एक समान उत्कर्ष हो। सारा राज्य ही राजधानी था, अर्थात् राजा सभी जनता को सुलभ था। इस हेतु जगह-जगह किले बने जहाँ रक्षा के लिए सेना रह सके और राजा भी राज्य भर में घूमते-फिरते हुए सारी प्रजा के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकें। राजा स्वयं ही राजसी बाना छोड़कर साधारण किसान की भांति हल चलाते थे और मामूली घरों में रहते थे। सारे राज्य में निःशुल्क शिक्षा थी, कोई छोटा-बड़ा या धनी-निर्धन न था। ऐसा समाजवादी विचार-धारा का समाज बना था जहाँ सबको रोजी और व्यवसाय सुनिश्चित था। ऐसी उदार विचार-धारा वाले साहब सिंह, उनके पुत्र खूरमदेव, पौत्र डोमनदेव, प्रपौत्र बड़ोमनदेव आदि सभी उस वृहद्राजधानी के विकास में लगे रहे। वे ऊँचे महल छोड़कर झोपड़ों में रहते रहे और जन-कल्याण के कार्य कराते रहे। फिर जाजा सिंह ने भी वही परिपाटी अपनाई; यहाँ तक कि असोथर राज्य को देखकर आगन्तुक और दर्शक यही कामना करते थे कि ऐसा ही क्षेत्र उन्हें भी निवास के लिए मिले। राजधानी का ऐसा आदर्श यदि सर्वत्र अपनाया जा सके तो सारा राष्ट्र ही स्वर्ग सा हो जाए और देवता भी इसे देखकर ईर्ष्या करने लगे।

खूरमदेव ने खुरूताल बनवाया। तदन्तर डोमनदेव, बड़ोमनदेव और जाजा सिंह ने भी अनेक जलाशय बनवाकर प्रजा को अकालजन्य कष्टों से बचाया। जाजा सिंह, प्रताप सिंह, परशुराम और हरिकेश सिंह ने राज्य को तो समृद्ध किया ही, स्वयं भी किसान ही बने रहकर श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

5.9 आठवीं किरण : खीचो भगवन्तराय

इस किरण का विभाजन भगवन्त-अवतार, भगवन्त-आल्हा और महाप्रयाण नामक खण्डों में हुआ है।

हरिकेश सिंह के छह पुत्र हुए। उनमें से दूसरे पुत्र भगवन्तराय विशेष प्रतिभाशाली और वीर थे; अतः सर्वसम्मति से वे ही राजा बनाए गए। उन्होंने दस्यु शासकों से खुलकर लोहा लिया। मध्य भारत (बुन्देलखंड) के राजा छत्रसाल और उनके पुत्रों की सहायता प्राप्त कर भगवन्तराय ने इलाहाबाद, कड़ा (मानिकपुर) और कोड़ा (जहानाबाद) के सूबेदारों से टक्कर ली और अवध के नबाब सादत खाँ तथा दिल्ली के मुगल सम्राट के वजीर कमरुद्दीन खाँ से युद्ध किए। इनका सारा जीवन युद्धों में बीता। इतिहास 48 युद्धों का साक्षी है। अन्त में दुर्जन सिंह नाम के एक विश्वासघाती सरदार ने यवनों की ओर से लालच पाकर छल से इनकी हत्या कर दी।

भगवन्तराय जंसे वीर और नीति-निपुण राजा थे, वैसे ही विद्वान भी थे। इनके दरबार में दजनों कवि और विद्वान आश्रय पाए हुए थे। वे स्वयं भी उच्च कोटि के कवि थे जिनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य में समादृत हुई हैं। इन्होंने अपने पूर्वज सन्त पीपाजी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए बहुत से धर्मच्युत हिन्दुओं को पुनः स्वधर्म में दीक्षित किया। मुस्लिम हो चुकी बहुत सी कन्याओं के विवाह हिन्दू सरदारों से करवाए और समवेत विवाह को प्रतिष्ठा प्रदान की। जाति-पाँति का भेद मिटाकर कर्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था फिर से आरम्भ की जो ब्राह्मणों द्वारा भी स्वीकृत हुई।

भगवन्तराय की मृत्यु पर देश भर में शोक व्याप गया। पंजाब, बुन्देलखण्ड, राजस्थान और महाराष्ट्र तक प्रभावित हुए। यह राष्ट्र की एक अपूरणीय क्षति थी। इनकी मृत्यु के बाद रूपराय सिंह गद्दी पर बैठे। तभी समुद्र मार्ग से अंग्रेजों के आने की खबर मिली जो मुगलों से अनुमति लेकर व्यापार करते थे, किन्तु गुप्त रूप से शासन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। अंग्रेजों ने बंगाल का शासन लगभग पूरी तरह हथिया लिया था और वे आगे बिहार तक फैल चुके थे।

5.10 उत्तर-पीठिका : क्रान्ति रेखण

उपसंहार के आरंभ में ही लम्बी भारत-वन्दना है जिसमें देश का लम्बा इतिहास देते हुए समय-समय पर इसपर हुए विदेशी आक्रमणों और उन्हें विफल करने की शौर्य-गाथा का चित्रण किया गया है। इन्हीं के सिलसिले में बहुत से विदेशी आकर यहां बस गए थे और यहां की संस्कृति से प्रभावित होकर स्वयं भारतीय बन गए थे। मुसलमान भी आक्रान्ता बनकर आए थे, और वे भी भारतीय संस्कृति के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। यद्यपि कुछ आक्रान्ता भारत में आकर भी अपना दस्यु-चरित्र नहीं सुधार सके, फिर भी देश भर से गुप्तचर जो सूचनाएं ला रहे थे, उनसे यह सिद्ध हो रहा था कि भारत में बस जानेवाले मुसलमान भी यहां के निवासियों के साथ भाई-भाई की तरह रहने लगे हैं। कई मन्दिर ऐसे हैं जिनमें हिन्दू-मुसलमान दोनों को प्रवेश का समान अधिकार है और एक मन्दिर तो ऐसा है जिसमें हिन्दू पुजारी के साथ एक मुसलमान पुजारी भी होता है। देश में हिन्दू-मुसलमान दोनों के त्यौहार-उत्सव भी परस्पर मिल-जुलकर मनाए जाते हैं। किन्तु अंग्रेज लोगों ने यहाँ आकर उत्पात मचाना आरंभ कर दिया था। व्यापार के बहाने वे देश की भूमि पर अधिकार करते जा रहे थे। प्लासी के युद्ध में छल-कपट से नवाब को हराकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी बंगाल में कब्जा कर चुकी थी और अब बिहार को दबोच रही थी। यह कम्पनी इंग्लैण्ड के डाकू, लुटेरे और सट्टे-बाज़ लोगों की बनी थी जिनसे वहां की रानी मानो पिण्ड ही छुड़ाना चाहती थी। इस खल-कम्पनी की लूट से दुखी रूप राय सिंह ने अवध के नवाब से मित्रता कर ली और दूसरे साथी भी खोजने लगे। किन्तु अंग्रेजों का आतंक दक्षिण में भी छा रहा था। इसलिए चिन्तामग्न हो अपने दत्तक पुत्र बरियार सिंह को राज्य-भार सौंपकर उन्होंने देह-त्याग किया।

बरियार सिंह ने अवध से मैत्री बनाए रखी और राज्य की व्यवस्था उसके मत्थे छोड़कर कुछ वृत्ति लेते हुए वे यमुना-पार साथियों की खोज करने लगे। जाट और मराठे आदि पानीपत की तीसरी लड़ाई में करारी हार खा चुके थे, अतः हिम्मत हारे हुए उसकी क्षति-पूर्ति में ही लगे थे। कोई भी देशी शासक खुलकर साथ देने का साहस न कर पाते थे, यद्यपि मन से सभी साथ देने के इच्छुक थे। मुगलों पर भी कम्पनी का आतंक बुरी तरह छाया हुआ था। दिल्ली का बादशाह विवश हो रहा था; उसके

सभी सूबेदार स्वच्छन्द हो रहे थे। राजा वरियार सिंह की आयु का अधिकांश बीत चला था किन्तु आगे कार्यभार सँभालने के लिए कोई उत्तराधिकारी न था, यह चिंता और भी गहरी थी। बहुत खोज करने के बाद एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र मिला, जिसे उचित शिक्षा देकर राजा का उत्तराधिकारी बनाया गया। राजगुरु ने उसका नाम दुनियापति रखा और कुल-परिपाटियों की सीख देकर धात्र-धर्म में दीक्षित किया। दुनियापति को शिक्षा देते हुए गुरु ने अनल-वंश के उद्भव से लेकर अद्यतन इतिहास से उन्हें अवगत कराया। इस प्रकार उपसंहार में सारे ग्रंथ, अनल-प्रकाश का सार-संक्षेप भी आ गया है।

दुनियापति ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना जुझारू दल तैयार किया। उधर अंग्रेजों ने अवध के नवाब पर दबाव डालकर खीची राजा को मिलने वाली वृत्ति बन्द करवा दी। फिर तो खीची नरेश ने सीधे अंग्रेजों से ही लोहा लिया। ये दो साल तक उनकी नाक में दम करते रहे। शिवाजी को आदर्श मानकर इन्होंने युद्ध की गोरिल्ला पद्धति अपनाई और इलाहाबाद के कलकटर अर्ल मुट्ठी का जरौली के बीहड़ वनों में उसकी सारी सेना-सहित मौत के घाट उतार दिया। अंग्रेजों ने इस क्षेत्र को अपराधी लोगों का क्षेत्र घोषित कर दिया। किन्तु दुनियापति की वृत्ति (पेंशन) फिर से चालू करवा दी। उधर खीची-नरेश जरौली युद्ध के बाद ही अपने सब साथियों सहित यमुना पार राजापुर होते हुए सगवार पहुँचे जहाँ पटेलों के पास गुप्त रूप से रहने लगे। राज-गुरु जिला फतेहपुर में एकडला के रावत, खागा के दरियाव सिंह, कोराई के शिवदयाल दुबे, रसूलपुर के जोधासिंह और फतेहपुर के हिकमतउल्ला आदि से मिलकर और आवश्यक विचार-विमर्श करके लौटे तब सगवार में यह निश्चित हुआ कि जिस प्रकार फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से सम्राट् लुई सोलहवें का अत्याचारी शासन समाप्त हुआ है, उसी प्रकार यहाँ भी अंग्रेजों के विरुद्ध व्यापक जन-क्रान्ति करनी चाहिए।

राज-गुरु के निर्देशन में खीचियों ने व्यापक जन-क्रान्ति की रूप-रेखा तैयार की और छिपे-छिपे, साधुओं के छद्म वेश में घूम-घूमकर, सर्वत्र उसका प्रचार किया। ये साधु छावनियों में जा-जाकर भारतीय सैनिकों को योजना से अवगत कराते और उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरित करते थे। उन्होंने मराठों और मुगलों को भी योजना में साथ लिया और

जनता में युवकों को युद्ध के लिए तैयार किया। साधु-वेश में ये लोग दिखाने को तो अंग्रेजी शासन की प्रशंसा करते और भगवद्भजन में लगे रहते किन्तु सत्संगों में और व्यक्तिगत चर्चा में भी मौका निकालकर विद्रोह की आग सुलगाते थे। यद्यपि राजा दुनियापति का 1850 ई० में देहान्त हो गया फिर भी क्रान्ति की जो भूमि उन्होंने तैयार की, उसपर 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का विस्फोट हुआ जिसे अंग्रेजों ने सैनिक विद्रोह कहकर दबाया और जनता का व्यापक दमन किया। इस क्रान्ति की सबसे अधिक प्रबलता अन्तर्वेद में ही रही।

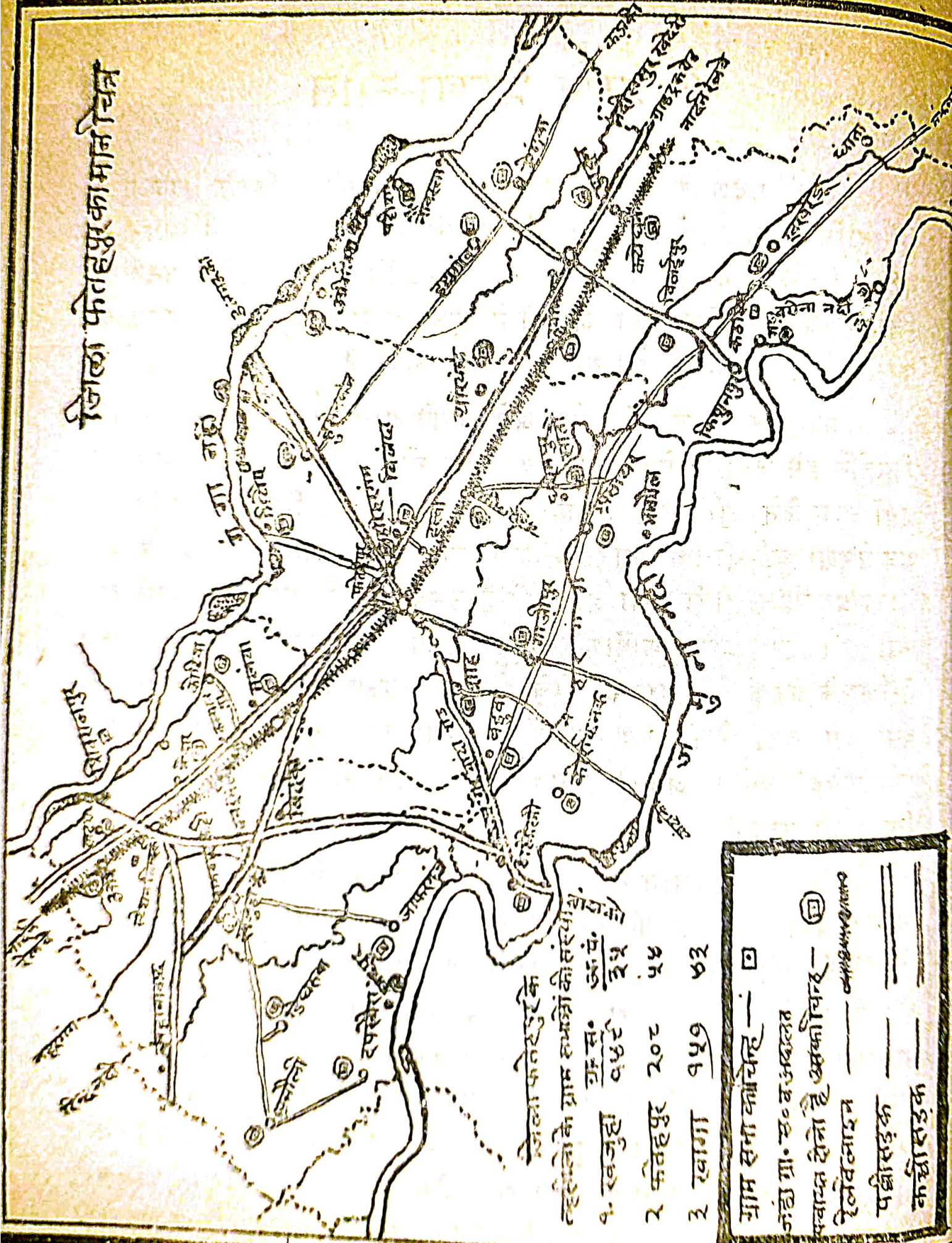
6. आदि प्रेरणा-स्रोत

उत्तर प्रदेश के जिला फतेहपुर में बिन्दकी के निकट खजुहा में ऐतिहासिक मुगल रोड के किनारे इमली का एक वृक्ष है जिसपर सन् 1858 ई० में आशा दूज के दिन वीरवर जोधासिंह अटैया और उनके 51 स्वातंत्र्य-प्रेमी साथियों को अंग्रेजों ने एक ही दिन एक साथ लटकाकर फांसी दी थी। तभी से इसे बावनी इमली कहते हैं।

फतेहपुर जिला वैसे भी अंग्रेजों की आंख की किरकिरी रहा है, जिन्होंने इसे जरायम पेशा लोगों का क्षेत्र घोषित किया था। लेखिका को वहीं जन्म लेने और शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला था, और तभी यह प्रेरणा हुई थी कि भारत में आदिकाल से देश-प्रेम की जो राष्ट्रीय धारा प्रवाहित होती चली आ रही है उसके बारे में कुछ शोध-कार्य होना चाहिए। इस प्रेरणा के पीछे फतेहपुर जनपद का कुछ कम योगदान नहीं है जिसके प्रेरक इतिहास का नीचे लिखा अत्यल्प अंश भी अंजन-शलाका का काम देता है। यह अन्तर्वेदीय साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित 'अन्तरवेद' वर्ष 1 अंक 1 जनवरी 1958 ई० से संक्षिप्त करके उद्धृत किया जा रहा है।

खजुहा (वर्तमान नाम बिन्दकी) तहसील में 'खिदिर ऋषि' की भूमि खदरा और आँग की सीमा में तथा पाण्डु नदी के पुल पर 15 जुलाई 1857 ई० को यहां के रण-वांक्तुरों ने जनरल हैवलाक और मेजर रेनार्ड की संयुक्त सेनाओं से दोनों युद्धों में घनघोर संग्राम करके मदान्ध गोरी सेनाओं के दांत खट्टे किए थे। कल्याणपुर में 14-7-1857 ई० को मेजर रेनार्ड को वीरवर अटैया ने बुरी तरह घायल किया था। कर्नल थवेल का वध 1-11-1857 को खजुहा में हुआ था। शिवराजपुर में गंगा किनारे नाना धूंधू पंत पेशवा से फतेहपुर के अजीमुल्ला खां और वीरवर रामचन्द्र राव तांत्या टोपे ने मन्त्रणा की थी, जिनके साथ अवध के सरौ राजा बेनी माधव सिंह, राव रामबख्श सिंह और इस जनपद के अनेक विद्रोही वीर थे। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई यहां गिरधर गोपाल के दर्शनों के बहाने

जिला फतेहपुरकामानचित्र



पधारी थीं। नाना साहेब और तांत्या टोपे ने यहीं कटरी के बीहड़ जंगलों में अपने अज्ञात वास का कुछ समय बिताया था। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद विस्मिल और भगत सिंह भी अपने अज्ञात वास के समय कुछ दिन यहां रहे थे।

वीरवर दरियाव सिंह, शिवदयाल सिंह, गयादीन दुबे और हिकमत उल्ला खां इसी जनपद की विभूति थ। दरियाव सिंह ने खागा को स्वतन्त्र कराकर 32 दिन तक शासन किया था। उस समय फतेहपुर नगर और बिलन्दा के सग्रामों में 1500 क्रान्ति-वीर काम आए थे। फतेहपुर को स्वतंत्र घोषित करके उसका शासन नाना साहब की ओर से जून-जुलाई 1857 ई० में एक महीने तक चकलेदार की हैसियत से हिकमत उल्ला खां ने संभाला था। इन सभी वीरों को अंग्रेजों ने फाँसी का झूला झुलाया था और जनरल हैवलाक ने फतेहपुर नगर लूटकर जला दिया था।

फतेहपुर जनपद प्राचीन ब्रह्मावत का एक खण्ड है, जो अन्तर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है। महर्षि भृगु और बादरायण वेदव्यास की तपोभूमि, महारथी गुरु द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा की वीर-भूमि और अश्विनौ कुमारों की पुण्य कर्म-भूमि यहीं थी। इस जनपद में सदा से ही ऋषि-मुनि, हुतात्मा, वीर और त्यागी महापुरुष जन्म लेते रहे हैं। वतन-परस्त जाँबाजों ने अपनी शानदार शहादत से इसे सदैव गौरवान्वित किया है। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध पहली लड़ाई हसवा के राजा हंसध्वज ने अलाउद्दीन से लड़ी थी। गुनीर नामक स्थान पर अरगल की वीर रानी पर अवध के यवन सूबेदार ने क्रुद्धि डाली थी जिसपर अपनी सहेलियों और दासियों सहित रानी ने आततायी की विनाश सेना के छक्के छुड़ा दिए थे। राष्ट्रीय भावना यहां सदा से ही रही है। लगभग तीन सदी पहिले असोथर के राजा भगवन्तराय खीची ने अपने को स्वतन्त्र घोषित किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें 48 युद्ध करने पड़े थे और अन्तर्वेद भर में अनेक किलों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराना पड़ा था। उन्होंने जिस स्वदेश-प्रियता और स्वातन्त्र्य-भावना को जन्म दिया, उसी के प्रवाह में, आगे उनके प्रपौत्र दुनियापति सिंह सन् 1802 से 1804 ई० तक अंग्रेजों की नाक में दम करते रहे और अन्ततः उन्होंने यमुना किनारे जौली के युद्ध में इलाहाबाद के कलक्टर अर्ल पृथ्वी को उसकी सेना सहित मौत के घाट उतारा था।

बिन्दकी तहसील का नोनारा ग्राम 1932 ई० के लगान-बन्दी आन्दोलन में इस जनपद का वारदोली कहा जाता था। गाँव के मात्र एक सरकारी गवाह के परिवार को छोड़कर लगभग मारा गाँव फतेहपुर की जेल में ठूस दिया गया था। फतेहपुर जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री श्याम लाल गुप्त 'पाषंद' ने सन् 1921 ई० में कांग्रेस के प्रसिद्ध झण्डा-गीत 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' की रचना की थी जिसने देश भर के स्वातंत्र्य-प्रेमी जन-मानस को दशाब्दियों प्रेरणा दी थी। हथगाँव निवासी अमर शहीद गणेश शकर विद्यार्थी ने कानपुर का 1931 ई० का साम्प्रदायिक दंगा शान्त करते हुए अपने प्राण दिए थे। सन् 1942 ई० के आन्दोलन ने भी इस जनपद को अछूता नहीं छोड़ा। बिन्दकी तहसील के ही स्वतंत्रता-संग्राम-मेनानी श्री हरप्रसाद गुप्त ने महात्मा गांधी और संत विनोबा के चरण-चिह्नों पर चलते हुए अपना जीवन ही राष्ट्र-सेवा के लिए समर्पित किया है। आप अनेक संस्थाओं और जिला परिषद् के अध्यक्ष रहते हुए भी नित्य प्रति चरखा चलाते हैं और केवल अपने हाथ से कते सूत के ही वस्त्र पहिनते हैं।

7. अनल-प्रकाश के रचयिता

गुप्त-बन्धु

विश्व के रचयिता विश्वकर्मा का उत्कृष्टतम रचना-कौशल, विश्व-मानस का एक मात्र वैविध्य शतदल, भारतवर्ष का मध्यदेश; और फिर उसका किजल देवभूमि अन्तर्वेद है। उसी के वर्तमान जनपद फतेहपुर के असोथर गाँव में वैश्य वंशावतंस श्री दुर्गा प्रसाद उर्फ मूनजी गुप्त एक ख्याति-प्राप्त वैद्य थे और अग्रसेन-वंशज वंश्यों में भी सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह करने के लिए प्रसिद्ध अग्रहरि समाज में भी अपनी विशेष क्रान्तिकारी विचार-धारा और विद्रोही भावना बनाए रखते थे, जिसकी छाप आपकी अनेक स्फुट रचनाओं में मिलती है। उनके बहुत से छन्द अब भी लोगों को कण्ठस्थ हैं। स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त आपकी दो लम्बी रचनाओं, शकर शत नाम और विष्णु सहस्र नाम की भी पाण्डु-लिपियाँ मिली हैं। सभी रचनाएँ ब्रज भाषा और अवधी में हैं।

आप 'मूनजी', 'मूनजू' या 'मून' उपनाम से कविता करते थे। समाज सुधार की एक संस्था सतसंगिनी सभा के आप मन्त्री थे, जिसकी कार्य-वाहियों में काव्य-रचना की शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण विषय हुआ करती थी। सभा की बैठकों में, जो नियमित रूप से पूर्णिमा का हवन-यज्ञ के साथ आरम्भ होती थीं, प्रतिमास सदस्यगण अपनी रचनाएँ सुनाया करते थे, और सभा के अध्यक्ष एवं काव्य-शिक्षा-गुरु मुंशी हनुमान प्रसाद उनमें संशोधन करते थे। वह सभा मानो एक कविता-पाठशाला ही थी। मूनजी की अभिव्यक्ति विशेष प्रभावशाली, भाषा सशक्त और शैली अत्यंत लोकप्रिय होती थी। अस्थाने प्रतिभा-प्रदर्शन पर चोट करते हुए आपने कहा था :

“लायो कछू फल मीठो बिचारि कै दूरि से दौरे सबे ललचाने ,
हाथ सों राखि कै चाखि लियो निसबादिल बोलि सबे अलगाने ।



(स्व०) श्री विश्वनाथ गुप्त
(सं० 1966 — 2042 वि०)



श्री विश्वेश्वर प्रसाद गुप्त
(सं० 1973 वि०—)



श्री विश्वनाथ प्रसाद गुप्त
(सं० 1975 वि०—)

‘मूनजू’गाहक चीन्ह्यो न लीन्ह्यो, अनाहक दीन्ह्यो बगारि दुकानें ,
रे जड़ जौहरी, गाँव गँवारन कौन जवाहिर के गुन जाने ?”
इसी प्रकार अंग्रेजों की दासता से खिन्न होकर आपने एक अन्योक्ति लिखी है :

“भूपति-धाम विचित्र महा तहँ कंचन-पीजरा बैठक ठायो ,
दूध औ भात प्रभात ते खात रहै रसना हरि-नाम सुहायो ।
‘मून’ इतै सुख में न रमै मन में बन-बाग बिहारहि आयो ,
मानि सुवा छल-छिद्र नितै बसि वृक्ष की ओट रमै मुद पायो ।”

इन्हीं दुर्गा प्रसाद उर्फ मूनजी के तीन पुत्र थे, तीनों ही गुणी, मेधावी और अपने पिता के समान ही क्रान्तिकारी विचार पालने वाले । और पढ़ाई तो पढ़ी; किन्तु कवित्व-प्रतिभा तो सभी को मानो उत्तराधिकार में मिली थी । गाँव का वातावरण तो कवित्वमय था ही, क्योंकि राजा भगवन्तराय के निधन के बाद भी उनका सुकवि-मण्डल बिखर भले ही गया हो, नितांत निष्प्रभ नहीं हुआ था । अतः गुप्त-बन्धुओं की साहित्यिक प्रतिभा कुछ तो जन्म-जात थी, कुछ परिवेश-जन्य, और रही-सही कसर पूरी कर दी पिता ने घर में ही संस्कारशीलता की शिक्षा देकर । शाला की शिक्षा तो केवल वृत्ति-साधन ही बनती है । ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वनाथ उत्तर प्रदेश सरकार में एक कार्यपालक इंजीनियर हुए थे । मध्यम, श्री विश्वेश्वर प्रसाद गुप्त, कोविद, वैद्य-विशारद परिवार की पैतृक परिपाटी की रक्षा करते हुए निःशुल्क चिकित्सा करते हैं; और कनिष्ठ श्री विश्वम्भर प्रसाद गुप्त, एफ. आई. ई. (इण्डिया), विशारद (साहित्य), विशारद (कृषि), चार्टर्ड इंजीनियर, भारत सरकार के अधीक्षक इंजीनियर पद से अवकाश प्राप्त कर पूर्णकालिक साहित्य सेवा में लगे हुए हैं । एक सम्मिलित परिवार में रहते हुए तीनों बन्धुओं ने अपने यशस्वी पिता के पद-चिह्नों पर चलते हुए हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि की है । साहित्य-जगत में यह परिवार ददा मैथिलीशरण गुप्त के आशीर्वाद सहित दिए हुए ‘गुप्त-बन्धु’ नाम से जाना जाता है, और इसी नाम से बहुत सा साहित्य-सृजन भी हुआ है । कुछ रचनाएँ अलग-अलग नाम से भी हुई हैं, विशेषकर इंजीनियरी और वैज्ञानिक विषयों की । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आपके दीक्षा-गुरु थे, तो राष्ट्र के जन-जन के कण्ठ-हार कवि सोहनलाल द्विवेदी आपके शिक्षा-गुरु कहे जा सकते हैं, क्योंकि उन्होंने आपकी रचनाओं

में बहुत छानबीन करके संशोधन भी सुझाए थे और इस संबंध में लंबा पत्र-व्यवहार भी उनसे हुआ करता था ।

‘गुप्त-बन्धु’ नाम से विरचित रचनाएँ निम्नलिखित हैं :-

- 1—भायप (सं० 2015 वि०), रामायण के आधार पर आदर्श भ्रातृ-प्रेम की झाँकी । शिक्षा-संचालक मध्य प्रदेश द्वारा अनुमोदित नाटक ।
- 2—भागीरथी (सं० 2017 वि०), गंगावतरण का वैज्ञानिक और भौगोलिक स्वरूप बताने वाला खण्ड-काव्य, संस्कृत छन्दों में । मध्य प्रदेश सरकार द्वारा अनुमोदित । यह रचना प्रस्तुत महाकाव्य ‘अनल-प्रकाश’ की पाँचवीं किरण है, जो पहिले प्रकाशित हो चुकी है ।
- 3—सावित्री (सं० 2018 वि०), भारतीय संस्कृति, आदर्श पारिवारिक जीवन, और देश-प्रेम की झाँकी । काल-जयी दाम्पत्य का आदर्श नाटक ।
- 4—हवाई घोड़ा (सं० 2020 वि०), हवाई जहाज और हेलीकोप्टर के आविष्कार और विकास की कथा, सचित्र । भारत सरकार का बाल-साहित्य पुरस्कार प्राप्त ।
- 5—कुदरती कैमरा (सं० 2022 वि०), आँख की कहानी, सचित्र । भारत सरकार का बाल-साहित्य पुरस्कार प्राप्त ।
- 6—पिता की खोज (सं० 2040 वि०), फ़ारसी के अमर कवि फिरदौसी के शाहनामा के प्रसिद्ध सोहराव-रुस्तम के प्रेरक आख्यान पर रची हुई हरिगीतिका-बहुल गीतिका । यह खण्ड-काव्य करुणा का स्रोत कहा जा सकता है ।
- 7—श्री सत्य-व्रत-कथा (सं० 2041 वि०), श्री सत्यनारायण व्रत की पौराणिक कथा का महत्त्व और सरस छन्दों में कथा का हिन्दी अनुवाद ।
- 8—अनल-प्रकाश (सं० 2047 वि०), प्रस्तुत अंतर्दृष्टि का समालोच्य महा-काव्य ।
- 9—बलिदान (अप्रकाशित), नाटक ।
- 10—भारत के प्रथम तीन राष्ट्रपति (अप्रकाशित), राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र

प्रसाद, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और डा० जाकिर हुसेन के संक्षिप्त जीवन-चरित्र ।

- 11— ब्रह्माण्ड हथेली पर (अप्रकाशित), खगोल विज्ञान की बालोपयोगी पुस्तक ।

श्री विश्वेश्वर प्रसाद गुप्त रचित :

- 1— लोकतन्त्र का जन्म (सं० 2021 वि०), अन्योक्ति के माध्यम से लोक-तन्त्र की आवश्यकता समझाने वाली सचित्र रचना । भारत सरकार से नव-साक्षर-साहित्य पुरस्कार प्राप्त ।
- 2— बाल-संवाद-पंचमी (अप्रकाशित), छोटे बच्चों के लिए पाँच अभिनेय लघु नाटिकाएँ ।

इंजीनियर विश्वंभर प्रसाद गुप्त की रचनाएँ :

- i— देहात की समस्याएँ (सं० 2019 वि०), आवास, मल-निपटान, जल-संभरण और छादन संबन्धी समस्याओं के लिए देहातों में उपयोगी समाधान, सचित्र । राष्ट्रपति पारितोषिक प्राप्त ।
- 2— अचल सम्पत्ति का मूल्यन (सं० 2022 वि०), इमारत, जमीन, खेत, बाग आदि के मूल्यन पर भारतीय परिस्थितियों का विवेचन । अनेक तालिकाओं और ग्राफों से युक्त । राष्ट्रपति पारितोषिक प्राप्त ।
- 3— भोजन—क्यों, क्या और कितना (सं० 2022 वि०), स्वास्थ्यप्रद सतुलित आहार की आवश्यकता और राष्ट्र की खाद्य-समस्या का हल, सचित्र । भारत सरकार से नव-साक्षर-साहित्य पुरस्कार प्राप्त ।
- 4— अल्मोनियम की कहानी (सं० 2025 वि०) केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा अनुमोदित, सचित्र, छात्रोपयोगी रचना ।
- 5— सुखदायी निवास—आवासीय वास्तुकला के मौलिक सिद्धान्त (सं० 2029 वि०), केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा अनुमोदित सचित्र रचना, भारत सरकार के निर्माण और आवास तथा स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन मन्त्रों की प्रस्तावना सहित । इंजीनियरों, छात्रों और जन-साधारण के लिए भी उपयोगी ।
- 6— कृषि विज्ञान प्रवेशिका (सं० 2045 वि०), किसानों और छात्रों के लिए उपयोगी कृषि-सम्बन्धी वैज्ञानिक जानकारी, सचित्र । इस पर

भारत सरकार का विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग का पुरस्कार (10,000 रु०) मिल चुका है।

7—ग्रामीण जल-प्रदाय (सं० 2045 वि०), ग्राम-विकास से सम्बन्धित अधिकारियों के लिए उपयोगी सचित्र पुस्तक जिसपर भारत सरकार का ग्राम विकास साहित्य पुरस्कार (7000 रु०) मिल चुका है।

8—नागर जल सभरण (सं० 2045 वि०), नगरीय विकास से सम्बन्धित अधिकारियों और इंजीनियरों के लिए उपयोगी सचित्र पुस्तक जिसपर केन्द्रीय लोक निर्माण विश्वकर्मा (द्वितीय) पुरस्कार मिल चुका है।

9—महामार्ग, उनकी आयोजना और ज्यामितीय अभिकल्पन (वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशन के लिए स्वीकृत), महामार्ग इंजीनियरी के सैद्धान्तिक पक्ष पर सर्वांगपूर्ण इंजीनियरी पुस्तक, सचित्र, जिसपर केन्द्रीय लोक निर्माण विश्वकर्मा (प्रथम) पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

उच्च कोटि के वैज्ञानिक और इंजीनियर होने के नाते वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों में हिन्दी के प्रयोग का पथ प्रशस्त करने के लिए आप लोगों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य सृजन में विशेष योग-दान श्री विश्वम्भर प्रसाद का रहा है जिन्होंने भारत सरकार के केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग में हिन्दी शाखा के प्रमुख रहते हुए प्रायः समस्त विभागीय साहित्य का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। आप वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की सिविल इंजीनियरी विशेषज्ञ समिति के सदस्य तथा रुड़की विश्वविद्यालय द्वारा अनूदित स्नातक-स्तर की इंजीनियरी पुस्तकों के संवीक्षक भी रहे हैं। आपकी विविध साहित्य-सेवाओं के लिए उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 1977 ई० में, विज्ञान वैचारिकी अकादमी ने 1981 ई० में और विज्ञान परिषद प्रयाग ने 1986 ई० में आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया है।

8. सन्दर्भ-सूची

भारत में राष्ट्रीय एकात्मता की सतत प्रवहमान धारा के अनुसंधान के लिए अनल-प्रकाश के रचयिताओं द्वारा पूर्व-पीठिका में उल्लिखित निम्नलिखित आधार-सामग्री का अध्ययन आवश्यक है :

1. देवदत्त 'देव' : जयसिंह विनोद ।
2. सदानन्द मिश्र : भगवन्त राय रासो ।
3. जिलाधीश ग्राउस : फतेहपुर का गजेटियर सन् 1852 ई० ।
4. मलौदी निवासी मुहम्मद खाँ : जंगनामा ।
5. गोपाल : भगवन्तराय की विरदावली ।
6. चतुरेस : स्फुट छन्द ।
7. भूषण : स्फुट छन्द ।
8. मून कवि : स्फुट छन्द ।
9. शम्भु : स्फुट छन्द ।
10. भूधर : स्फुट छन्द ।
11. इन्द्र : स्फुट छन्द ।
12. सारंग : स्फुट छन्द ।
13. मल्ल : स्फुट छन्द ।
14. टीकाराम : स्फुट छन्द ।
15. नेवाज : स्फुट छन्द ।
16. देवान : स्फुट छन्द ।
17. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
18. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
19. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन पण्डित और कवि ।
20. असोथर के राजा नरपति सिंह : अनल वंश वंशावली ।
21. नाभादास : भक्तमाल ।
22. क्षत्रिय वंश भास्कर ।
23. भविष्य पुराण ।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित साहित्य भी देखना समीचीन होगा, जहाँ समानान्तर विचार-धाराएँ उपलब्ध हैं :

1. अन्तरवेद पत्रिका वर्ष 1, अंक 1, जनवरी 1958 ।
2. कणाद मुनि : वैशेषिक दर्शन ।
3. कादम्बिनी, अगस्त 1988 अंक ।
4. (दि) कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया खण्ड 1 ।
5. कौटिल्य : अर्थशास्त्र ।
6. गुप्त-बन्धु : पिता की खोज ।
7. जयशंकर 'प्रसाद' : स्कन्दगुप्त ।
8. तुलसीदास : रामचरित मानस ।
9. तैत्तिरीय उपनिषद् ।
10. पुराण—गरुड़ पुराण, भागवत महापुराण, विष्णु महापुराण ।
11. (डा०) भगवती प्रसाद सिंह : रामकाव्य-धारा—अनुसंधान एवं अनुचिन्तन ।
12. मनु : मनुस्मृति ।
13. महाभारत ।
14. (डा०) महेन्द्र प्रताप सिंह : भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि ।
15. बाल्मीकि : रामायण ।
16. वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ।
17. सुन्दरलाल : भारत में अंगरेजी राज, पहिली जिल्द ।
18. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 1 ।

राष्ट्रीय एकात्मता की सतत प्रबहमान धारा

का सन्दर्भ

गुप्त-बन्धु कृत

अनल-प्रकाश महाकाव्य

अनल-प्रकाश

वेद-वाणी

युवामिद्ध्यवसे पूव्याय, परिप्रभूति गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय, शूरा मंहिष्ठा पितुरेव शंभू ॥
ऋग्वेद 4/41/7 ।

वि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्मां अभिदासति, अधरं गमया तमः ॥
ऋग्वेद 10/152/4 ।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सन्चस्वा नः स्वस्तये ।

ऋग्वेद 1/1/9 ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥
यजुर्वेद 31/18 ।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जया मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद्, धनंजयो हिरण्यजित् ॥
अथर्ववेद 7/50/8 ।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा, अस्यभ्यं सन्तु पृथिविप्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना, वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥
अथर्ववेद 12/1/62 ।

भाषानुवाच

चुनें तुम्हें, गोपति¹ पूर्वगों के² समान रक्षा, हित और मैत्री
के हेतु ही, शूर समर्थ मान्यो, माता-पिता-तुल्य नरेश-मंत्री ॥

ऋग्वेद 4/41/7 ।

हे इन्द्र सेनापति, युद्ध जीतो, नीचा दिखा दो अरि-वाहिनी को ।
हमें मिटाने पर जो तुला हो, उसे अँधेरे अहिलोक भेजो ॥

ऋग्वेद 10/152/4 ।

सुत को पिता सरीखा वह प्रभु हमें सुलभ हो,
दुख दूर कर हमारे कल्याण के लिए ही ।

यजुर्वेद 3/24 ।

जानिए उस पुण्य पुरुष महान को, पार तम के दिप रहा³ जो सूर्य सा ।
वृत्त जिसके जीत लेते मृत्यु को, अन्य कोई पथ नहीं है श्रेय का ॥

यजुर्वेद 31/18 ।

है कर्म दाएँ कर मध्य मेरे, त्यों जीत बाएँ कर में बसी है ।
गोजीत हों अश्वजयी हम्हीं हों, धनंजयी और हिरण्यजित् भी ॥

अथर्ववेद 7/50/8 ।

हे मातृ-भूमे, हम पुत्र तेरे अयक्ष्म⁴ हों निर्गंद-काय-स्वामी⁵,
दीर्घायु हों, किन्तु सदैव तेरे लिए रहें, मां, बलि-मार्ग-गामी ॥

अथर्ववेद 12/1/62 ।

1. इन्द्रियों के स्वामी । 2. पहिले हुए (राजाओं) के । 3. चमक रहा है ।

4. क्षय रहित । 5. नीरोग शरीर वाले ।

वन्दे भारत मातरम्

श्रीगणेश

कभी कहीं इतिहासकार ऐसा जनमेगा,
कर निष्पक्ष प्रकाश लेखनी सफल करेगा;
क्योंकि सदा सद्वृत्त सदाशयता वरती है;
है अनन्त यह काल और पृथुला धरती है।

मंगलाचरण

हम घूप-दीप-मालाओं में ही ध्यान लगाए रहे, अहो;
उलझे रहकर वाह्याडम्बर में भूल तुम्हें ही रहे, प्रभो।
इस ताम-झाम में पूजा के खुद ही घोखा हम खाते हैं।
भगवन्त खिसक जाते चुप कब कुछ जान नहीं हम पाते हैं।

बजते घड़ियाल-घड़ी-घटों के बीच रहे भूले-भटके;
देखा न उन्हें, परसे न चरण, दो बातें भी तो कर न सके।
तो फिर मन्दिर में उन्हें खोजने जाने से कुछ लाभ नहीं;
मन-मन्दिर के कोनों में ही गढ़ लें हम कुछ लघु कोटर ही;

फिर दिव्यात्माओं का सविनय हम सरल हृदय कर ध्यान धरें;
प्यासे दृग उनकी एक झलक के हेतु जनम भर तरस मरें;
तो आए बाणी ही गाती सब को कृतार्थ कर देने को,
अप्रतिम वीरों के राष्ट्र-प्रेम की गूँज यहाँ भर देने को।



महाराज भगवन्तराव फुले

(असोचर तरेण मं० १७७०—१७९२ वि०)

ॐ

राष्ट्र-वन्दना

सौराष्ट्र से लेकर असम तक रच प्रकृति ने एक ही ,
कश्मीर से कन्या-कुमारी तक पसारी है मही ,
सब भारती सन्तति जहाँ 'हम एक हैं' गायन करें ,
हम मातु-पितु-गुरु-तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें ।

पूर्व-पीठिका
आभार

वन्दे भारत मातरम्

प्रभु-विनय कर नम्रता से युक्त हो ,
पूज्य गुरु-पद-पद्म में अनुरक्त हो ,
अर्थ के अनुरूप हो अपनी गिरा ,
भार-वहन-समर्थ, पूत, सशक्त हो । 1

देश पर संकट-घटा जब छा रही ,
जब मनो में अनय प्रश्रय पा रही ,
लोग अपना स्वार्थ ही जब देखते ,
सुकृति को दुष्कृति दबोचे जा रही । 2

बोर तम जब फैलता हो सब कहीं ,
सूझ भी पड़ता हिताहित जब नहीं ,
कर्ण-धार स्वधर्म ही जब भूलकर ,
उठ रहे हों स्वार्थ से ऊपर नहीं । 3

तब गिरा का यह प्रथम कर्तव्य है ,
देख ले, क्या देश का भवितव्य है ,
कवि-मनीषी-चिन्तकों को दे सुझा ,
क्या कयानिधि ईश का मन्तव्य है । 4

ईश का मन्तव्य भी तो स्पष्ट है,
दूर करना सृष्टि के सब कष्ट है,
अन्य के लेकिन बढ़ावे कष्ट जो,
वह अधम, भू-भार है, पथ-भ्रष्ट है । 5

सोचने को ईश ने दी बुद्धि है;
किन्तु उसकी भी अपेक्षित शुद्धि है,
अन्यथा निश्चित प्रकृत्या¹ है पतन,
सुमति नर-तनु की अलौकिक सिद्धि है । 6

री गिरा, कर्त्तव्य में सन्नद्ध हो,
सुमति लाने हेतु अब कटिवद्ध हो,
दिव्य पुरुषों के पुनः गा गीत अब,
विकृत मानस सुन जिन्हें कुछ शुद्ध हो । 7

धर्म-ग्रंथ सुवृत्त गाते हैं सही,
किन्तु जन-मानस रमा पाते नहीं,
मान जन उनको अलौकिक वन्द्य ही,
वृत्त अनुकरणीय गिनते हैं नहीं² । 8

इसलिए वाणी कथा उनकी कहे,
पैठ जन-जन के हृदय में जो रहे,
आंख से देखे हुए नरवर विरल,
कष्ट जन-हित हेतु सहते जो रहे । 9

अस्त कब का था तरणि रघु-वश का,
चन्द्र वश न पार तम का पा सका,
रच महाभारत परिस्थिति से विवश,
राष्ट्र को कर एक यदु-कुल सो चुका । 10

टिप्पणी : चौकोर कोष्ठकों में सन्दर्भ-सूची में उल्लिखित ग्रंथ-संख्या दी हुई हैं ।

1. स्वाभाविक रूप से । 2. धर्म-ग्रंथों का उपयुक्त प्रभाव जन-मानस पर नहीं पड़ता, क्योंकि उनके सुन्दर कथानकों को लोग अलौकिक और वन्दनीय ही समझते हैं, अनुकरणीय नहीं ।

मौर्य-कुल का, गुप्त-कुल का बल चुका,
कर समर सीसौदिया कुल भी थका,
सिख मराठे भी; परन्तु अड़े रहे,
अनल खीची ही लिए ध्वज देश का । 11

जानकर अपनी निपट अल्पज्ञता,
अनल यश-विस्तार-युत गभीरता,
सिन्धु-तट पर आज साधनहीन सा,
सेतु पाने हेतु कवि अवलोकता । 12

दृष्टिगोचर सेतु है ऐसा हुआ,
देव-कृत आधार का जिसका कुआँ³,
उत्खनित जयसिंह-युक्त विनोद था,
विक्रमी ग्रह-ऋषि-ऋषि-क्षिति⁴ में हुआ । 13

पूर्ति⁵ पा रासो⁶ सदानन्द मिश्र कृत,
ग्रह-नभ-ग्रह-अवनि में⁷ ग्राउस-लिखित
'गजटियर'⁸ प्रकटा प्रथम दृढ़ खम्भ⁹ सा,
वर्ष युग में अन्य भी युग मणि-खचित—14

3. बड़े पुलों में नींव सुदृढ़ करने के लिए कुएँ गलाए जाते हैं; ऐसा एक आधार-कूप देवदत्त कवि लिखित 'जयसिंह विनोद' [1] है। 4. ग्रह = 9, ऋषि = 7, ऋषि = 7, क्षिति = 1; 'अंकानाम् वामतोगतिः' के अनुसार सं० 1779 विक्रमी। 5. नींव के कुएँ गलाकर भर दिए जाते हैं, जिससे वे ठोस होकर सुदृढ़ हो जाएं। 6. सदानन्द मिश्र रचित, 'भगवन्तराय रासो' [2]। 7. ग्रह = 9, नभ = 0, ग्रह = 9, अवनि = 1; अर्थात् सं० 1909 विक्रमी। 8. फतेहपुर जिले का गजटियर सन् 1852 ई० का जिसे तत्कालीन कलेक्टर ग्राउस ने लिखकर प्रकाशित कराया था [3]। 9. पुल का सुदृढ़ खम्भा।

‘जंगनामा’¹⁰ कवि मुहम्मद खां रचित,
अमर ‘विरदावलि’¹¹ सुकवि गोपाल-कृत,
पा चतुर चतुरेस¹², भूषण¹², मून¹² ने,
अति सुदृढ़ निर्माण को उपयुक्त छत¹³। 15

तब सुगम पा इन्द्र¹⁴, भूधर¹⁴, शम्भु¹⁴ ने,
सुकवि सारंग¹⁴, मल्ल¹⁴, टीकाराम¹⁴ ने,
कवि नेवाज¹⁴, देवान¹⁴, आदिक ने जड़े,
निज सुनामों के विविध पत्थर घने। 16

पुलिन पर क्या जगमगाते दीप ही,
वचन शुक्ल¹⁵ तथा द्विवेदी¹⁶ के नहीं?
नृपति नरपति¹⁷ रचित वंशावलि सुपथ
पर जनश्रुति-चन्द्रिका भी हो रही। 17

वृत्त ‘क्षत्रिय वंश भास्कर’¹⁸ रश्मि भी,
स्मृति-पटल पर कर रही चित्रित सभी।
गंधवह सी क्या न यश-धारा बनी,
वह रही ले ‘भक्तमाल’¹⁹ सुगन्धि भी। 18

10. भगवन्तराय का जंगनामा, मलीदी-निवासी कवि मुहम्मद खां ने सन् 1160 हिजरी (सं० 1803 वि०) में लिखा था [4]। 11. भगवन्तराय की विरदावली गोपाल कवि ने सं० 1800 वि० के आस-पास लिखी, जो अवधवासी प्रेस, रकावगंज लखनऊ से प्रकाशित हुई [5]। 12. अनेक कवि [6, 7, 8] जिन्होंने भगवन्तराय के विषय में बहुत-कुछ फुटकर लिखा (अन्य कवियों की चर्चा पाद-टिप्पणी 14 में है)। 13. पुल के खम्भों के ऊपर की पाटन। 14. इन कवियों ने भी खीची वंश की यश-गाथा गाई [9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16]। 15. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जिन्होंने ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास [17]’ में भगवन्तराय खीची पर प्रकाश डाला। 16. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जिन्होंने, अपनी ‘प्राचीन पण्डित और कवि [19]’ में सुखदेव मिश्र और उनके आश्रयदाता भगवन्तराय पर प्रकाश डाला। 17. असोशर भी राजमाता ने शोध के आधार पर ‘अनल-वंश-वंशावली [20]’ तैयार करवाकर अवधवासी प्रेस लखनऊ से सं० 1973 वि० में प्रकाशित करवाई। 18. ‘क्षत्रिय वंश भास्कर [22]’ में

सुदृढ़ पुल पर पांव पड़ने पर प्रथम ,
 है उचित उनको करें यदि याद हम ,
 जो सहायक या कि अधिशासी रहे ,
 मुख्य अभियन्ता रहे या वाक्-क्षम । 19

है नहीं लिप्सा उन्हें आभार की ,
 किन्तु है यह ही प्रथा संसार की ।
 याद कर होना उक्तृण या स्वस्थ चित ,
 है न क्या झाँकी कृतघ्न विचार की ? 20

हाँ, उन्हीं के चरण-चिह्नों पर कदम
 रख सके सौभाग्य से यदि आज हम ,
 देश के बलिदानियों की यह कथा ,
 गा करेंगे लोक-मानस धन्य हम । 21

है कथा ही लोक-मानस-हारिणी ,
 आत्मबलदा और मंगल-कारिणी ।
 हैं स्वयं कृतकृत्य कविगण गा कथा ,
 अनल-कुल की देश-भक्ति-प्रसारिणी । 22

वार गुरु से राम से नवमी यथा ,
 वर्ष विक्रम है सुसम्बन्धित तथा ।
 गुण-अवनि-आकाश-सुरसरिकूल²⁰ से ,
 हो रही प्रारम्भ जब पावन कथा । 23

अनल-वंश की दिव्य कथा सीपी है सुन्दर ,
 मोती पलता राष्ट्र-प्रेम का जिसके अन्दर ।
 खोल उठा जो एक नजर भी डाल सकेंगे ,
 जन-हित की वे ललक हृदय में पाल सकेंगे । 24

चोहानों का काफी वर्णन है । 19. 'शपथमाल [21]' में खीची राजा भक्त
 पीपाजी का वृत्तान्त है । 20. गुण = 3, अवनि = 1, आकाश = 0, सुरसरि कुल =
 2; अर्थात् विक्रमी संवत् 2013 की रामनवमी, गुरुवार को यह रचना आरम्भ
 हुई ।

पढ़ें-सुनें जो तनिक भी यह गाथा गुणयुक्त ,
राष्ट्र-प्रेम का अमृत पी बनें अमर वे मुक्त । 25

धर्म-सेतु-रचना सुभग, पा श्रुति-अनल-प्रकाश ।
विकसावे सम-दृष्टि मृदु कर जन-मन-मल नाश । 26

पाट विकट वैषम्य का नित चोड़ाता खात ।
यह दोनों तट जोड़ दे सुदृढ़ सेतु विख्यात । 27

पहिली किरण

खीची-चौहान

पूवं खण्ड — अनल-उद्भव

मध्य खण्ड — चौहान-चन्द्रिका

उत्तर खण्ड — खीची-यज्ञ

ॐ

राष्ट्र-वन्दना

वटुगण जहां बस गुरुकुलों में सीखते सुचरित्र हैं ,
द्वादश अरण्य¹ सुरम्य वन ऋषि-मुनि-निवास पवित्र हैं ,
जो वेद-वन्दित पुण्य-प्रद हो ताप तन-मन का हरें ।
हम मातु-पितु-गुरु तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें ।

1. इनका विवरण अन्तर्दृष्टि के अनुच्छेद 4.3 (पृ० 46-48) में दिया जा चुका है ।

पूर्व खण्ड
अनल उद्भव

वन्दे भारत मातरम्

वह शक्ति-पुंज, वह परम ईश ही नियमों में बाँधे रखता
है इस विस्तृत खगोल को; सब कुछ तभी नियंत्रण में रहता ।
वह शक्ति न हो तो इसका विघटन और विनाश सुनिश्चित है ;
ज्यों केन्द्र अशक्त हुए अनियन्त्रित होता राष्ट्र विखण्डित है । 1

लोक-मानस भावि-चिन्तन-व्यस्त था ,
अग्निवर्ण¹ महीप ही क्षय-ग्रस्त था ,
और सन्तति-हीन जब वह चल बसा ,
सूर्य ही रघुवंश का मनु अस्त था । 2

फिर पसरती ही अराजकता गई ,
शासकों की बढ़ निरंकुशता गई ,
देख आर्यों का कलह पारस्परिक ,
लोक-मानस में निराशा छा गई । 3

लाभ कुछ इससे उठा लें, सोचकर ,
राक्षसों के दो प्रमुख नेता प्रवर ,
दुखित आतंकित लगे करने प्रजा ,
सैन्य-सेवित विविध अत्याचार कर । 4

1. सूर्य-वंश का अंतिम राजा ।

धुन्ध छाती, मुंह छिपाता सूर्य भी,
तान छाती धुन्धकेतु सदल जभी
साथ चलता धूमकेतु अराल² के,
पात जैसे काँपते भय से सभी । 5

देख ऋषि-मुनि और मानव त्रस्त बति,
खोजने कर्तव्य अपना देश प्रति,
चल पड़े सब धीर, वीर, जयी, वशी,
यज्ञ मिस एकत्र करने को सुमति । 6

वीर-भू में शृंग आवू के निकट,
सतत-सलिला सरस्वति के पुण्य तट
पर मनोरम शान्त गोमुख-कुण्ड पा,
हो गया एकत्र जन-जमघट विकट । 7

गुरु वशिष्ठाश्रम वहाँ अति सौम्य था,
ध्यान-रत-ऋषि-मुनि-कुटीरों में तथा
आम-जामुन-पनस³-कुंजों में सजा
दिव्य यज्ञ-स्थल पुनीत सुरम्य था । 8

लोक-हित के कार्य ही शुभ यज्ञ हैं,
जो सफल होते तभी जब विज्ञ हैं,
सोचते सब मिल प्रभावी यत्न ही,
और चुनते कर्मवीर गुणज्ञ हैं । 9

देश के हों वीर योद्धा एक अब,
और भूलें आपसी मतभेद सब
फिर करें मिल राक्षसों का सामना,
यों जुड़ा बहुवर्ण सम्मेलन भजब । 10

अग्निहोत्र विशाल अबुं द-पीठ⁴ पर,
 एक मत से गुरु वशिष्ठ-प्रणीत कर,
 सोचते सब, दुष्ट-दलन समर्थ ही,
 क्या न अब कोई रहा है वीरवर। 11

यज्ञ के उपरान्त ऋषियों ने वहाँ,
 एक से बढ़ एक ओजस्वी महा,
 वक्तृता दे फूँक दी नव चेतना,
 दीर्घ जब निःश्वास ले-लेकर कहा—12

“आर्य-संस्कृति आज लुप्तप्राय सी,
 भूमि आर्यावर्त⁵ की दुख में फँसी।
 कौन है तुममें, उबारे जो इसे?”
 सोच सबकी दृष्टियां नीचे धँसीं। 13

प्रकृति भी निस्तब्ध मानो सो रही,
 शान्त जिह्वा थी चपलता खा रही
 अग्नि की भी ओर जन-समुदाय की
 मूक थी मानो गिरा ही हो रही। 14

किन्तु मन्थन हो गया जन-सिन्धु का;
 सुप्त जन-उत्साह भी था जग चुका;
 लहर लेने लग गई राष्ट्रीयता,
 और था अवसाद मन का जा चुका। 15

फिर अचानक ‘अनलराव⁶’ स्वनामधन्य,
 अन्त कर निस्तब्धता नैराश्यजन्य,
 चाप कर धारे बढ़े, बीड़ा लिया,
 खल-दलन का शब्द गूँजा ‘धन्य-धन्य’। 16

4. अरावली पर्वत के ऊपर। 5. देखिए अंतर्दृष्टि की पाद-टिप्पणी 56।

6. एक धनुर्धारी क्षत्रिय, जिसके नाम से ‘अनल-वंश’ या ‘अग्नि-वंश’ चला।

अनुगमन उनका किया अविलम्ब था,
 'वीरवर'⁷ अरु 'दुर्जनांकुश'⁸ ने तथा
 'देव कुंचल'⁹ जब वहां साथी हुए,
 शौर्य-आशा-पूर्ण वातावरण था । 17

क्षीण था उस काल क्या तप-बल भला,
 क्षात्र-बल को जो जगाने वह चला ?
 किन्तु तप-बल नष्ट करने से कहीं
 क्षात्र को कर्तव्य-रत करना भला । 18

है अहिंसापूर्ण आन्दोलन सही
 तप सबल, चाहे लगे कुछ देर ही ;
 किन्तु अति क्षति रोकने के हेतु है
 एक तात्कालिक चिकित्सा क्षात्र ही । 19

तप किया था उग्र विश्वामित्र ने ;
 राक्षसों के लक्ष्य फिर भी वे बने ।
 अन्ततः रक्षार्थ पाने क्षात्र-बल
 विवश याचक भूप दशरथ के बने । 20

चार राघव वीर से जब यज्ञ ने
 दे दिए तब शीघ्र अनुयायी बने
 आ गए द्रुत देश-रक्षा के लिए ;
 राम-रावण-रण रचा, सब खल हने । 21

हो गए कृतकृत्य ऋषि-मुनि-जन सभी,
 वर यथेच्छापूर्ण आशीर्वाचन भी
 दे किया सत्कृत उन्हें, सन्तुष्ट हो,
 आर्य-भूमि न धीरहीन रही कभी । 22

7. वीरवर, जिन्होंने परमार वंश चलाया । 8. दुर्जनांकुश, जिन्होंने सोलंकी-
 वंश चलाया । 9. कुंचलदेव, जिन्होंने परिहार-वंश की नींव रखी [20] ।

लोट क्रम से घर गए उत्फुल्ल-मन ,
मांडवार सुदेश को शोभा-सदन ।
अपर उज्जयिनी तथा गुजरात को ,
और चौथे निकट आवू गिरि स-वन । 23

प्रथम निकले चाप हाथ लिए हुए ।
चापुहान अतः बने 'चौहान' वे ।
अपर भी 'परमार' 'सोलंकी' सक्रम ,
अग्रणी 'परिहार' वंशों के हुए । 24

लोक तब चौहान को कहने लगा
यज्ञ-संभव वंश, नाम 'अनल' लगा ।
अन्य कहते, अनलराव महान था ;
वश में भी नाम ही उसका लगा । 25

देश भर में कीर्ति छाई अनल की ,
अरि-सुहृद करते बड़ाई अनल की ;
श्री-धरा ने एक साथ वरा उसे ,
धन्य युगल सपत्नियां¹⁰ थीं अनल की । 26

विविध मख करके सविधि उस वीर ने ,
सब नृपों से मान पाकर धीर ने ,
राज्य सौंपा 'अनुजराव' सुपुत्र को ,
मार्ग बन का लें स्वयं योगी बने । 27

10. श्री (लक्ष्मी) और धरा (पृथ्वी) मानो राजा की दो पत्नियां थीं
जिनका पोषण करना था ।

लब्ध यश अक्षुण्ण सब रखते हुए,
 सत्य अनुसन्धान नित करते हुए,
 जन्म निज सार्थक जितेन्द्रिय ने किया,
 योगियों का पथ सुलभ करते हुए। 28

चक्रवर्ती सुत 'अजय' ने दिग्विजय
 कर, बना गण, राज्य सब करके विलय;
 राज्यपाल नियुक्त कर अधिकृत किए।
 युग अपर भी हो गया द्वापर उदय। 29

यों उदय 'अनल' के वंश का, हुआ राष्ट्र के त्राण हित।
 थे जिसके वंशज देश पर, रहे होमते प्राण नित। 30

मध्य खण्ड
चौहान-चन्द्रिका

ॐ

वन्दे भारत मातरम्

री गिरा, लेखनी चलने पर क्यों राग सुनाई देते हैं ?
क्यों आती है सुमधुर जय-ध्वनि ? क्या कवि तव पुत्र चहेते हैं ?
बस, बस, समझे, यह अनल-वंश के चौहानों की गाथा है
लिख रही लेखनी जिनके प्रति नित नत जन-जन का माथा है । 1

युग बीत गया, पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन बलिदानी वीरों ने
आक्रान्ता म्लेच्छों से टक्कर ली जम-जमकर रणधीरों ने ।
है परम्परा लम्बी, अभंग, कुछ ज्ञात और अज्ञात कहीं ;
पर गिने-चुनों के स्मरण मात्र से भी वाणी है सार्थक ही । 2

नृप युगालंकार पाकर 'अजयपाल'
वसुमती ने भेंट दी वसुएँ निकाल ;
कोष भरकर धन्य सागर भी हुआ
रत्न देकर और ढोकर पोत-जाल ।

'माद्र' नृप इस शृंखला में ही हुए ,
स्वर्ग ही इस भूमि को जो कर गए ;
जनक 'शल्य' महारथी रणधीर के
और 'माद्री' नाम कन्या के हुए । 4

शल्य ने कर युद्ध भारत² में तुमुल ,
 एक दिन कर सैन्य-संचालन कुशल ,
 युधि³ युधिष्ठिर भागिनेय⁴ समक्ष पा—
 वीर-गति, ली कीर्ति अजंन कर विपुल । 5

समर था कर पार बरुणाई रहा ,
 राज्य था प्रत्येक पासा हो रहा
 राज-नय-पट्ट द्वारिकापति कृष्ण का ;
 उधर द्वापर था विदाई ले रहा । 6

शल्य-सुत आरूढ़ सिंहासन हुए ;
 समर के उपरान्त सत्वर⁵ लग गए
 शान्ति करने के उपायों में सुदृढ़ ;
 नाम से वे ख्यात 'शकर' ही हुए । 7

पुत्र उनके शान्ति की थे मूर्ति ही ;
 निज पिता के कार्य की शुभ पूर्ति ही
 'राव वरदायी' नृपति की साध थी ;
 शान्ति-प्रिय पाते नृपति से स्फूर्ति ही । 8

देश में नृप-वंग फिर भी दुष्ट जो
 था, न कर पाता प्रजा का इष्ट जो ,
 शूल से 'अतिशूल' वरदायी-सुवन
 बाध्य करते, कह उसे—'शठता तजो' । 9

'कर्ण सिंह' सुपुत्र ने उनसे किया
 कर्ण⁶-धारण, जब नृपति ने वन लिया ।
 कर्ण⁷-सम हो सिंह नृप-गज-पूथ को ,
 अमल यश-पीयूष भी उसने पिया । 10

2. महाभारत । 3. युद्ध में । 4. भागजा; महाभारत में शल्य को उनके
 भागजे युधिष्ठिर ने मारा था । 5. शीघ्र । 6. पतवार । 7. कुंती-पुत्र कर्ण ।

‘मदनशूल’ सुपुत्र जनमे कर्ण के ,
वीर, शोभा-धाम, धनी सु-वर्ण के ;
शूल⁸ मदन सलज्ज ने अनुभव किया
लख उन्हें संयोग सा मणि-स्वर्ण के । 11

‘राव धूमद’ वीर सुत उनके हुए ,
राज्य दे जिनको तृतीयाश्रम गए ;
सूर्य से अपराह्न-पोषित चन्द्र⁹ ले
यह धरा ज्यों अमृत-वर्षण के लिए । 12

सुवन ‘माधवसिंह’ जब गद्दी चढ़े ,
भूमि से बहुमूल्य ढेर खनिज कढ़े ;
सेविका बन तरुण माधव¹⁰ ओर ही
भूल माधव¹¹ को, चला¹² जैसे बढ़े । 13

ऐसी सित यश-चन्द्रिका फैली थी अम्लान ।
वंशज हुए कृतार्थ सब, करके जिसमें स्नान । 14

8. कामदेव का कंटक बना क्योंकि मदनशूल सुंदरता में उसे लज्जित करता हुआ वीर भी था । 9. अपराह्न में चन्द्रमा का पोषण करके जिस प्रकार सूर्य सायंकाल उसे पृथ्वी पर अमृत बरसाने के लिए छोड़कर चला जाता है, उसी प्रकार धूमदराव का पोषण करके मदनशूल ने भी और अधिक सम्पन्न करने के लिए उनको राज्य देकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया । 10. युवक राजा माधव सिंह । 11. लक्ष्मीपति विष्णु, जिनको पुरातन पुरुष भी कहा जाता है, अतः जो वृद्ध होने के कारण लक्ष्मी को उतना आकर्षित नहीं कर सकते थे, जितना युवक माधव सिंह । 12. लक्ष्मी जो चल है, अर्थात् किसी एक ही व्यक्ति के पास स्थिर नहीं रह सकती ।

‘महारूप’ फिर हुए नृपति ‘नगराव’ अनन्तर ,
 ‘सिहराव’, ‘मतिराव’ ‘राव बालंसी’ नृपवर ।
 क्रम से ‘कुलपतिराव’ और नृप ‘योगराव’ फिर ,
 सभी भोगते रहे धरा-श्री पैतृक पाकर । 15

‘योगराव’ के पुत्र ‘राव माणिक’ तदनन्तर ,
 माणिक इव सब राजाओं के कण्ठमाल-वर ;
 ‘संभरिराव¹³’ सुनाम तथा ‘लाखन सिंह संभर¹³’
 ले कर हुए प्रसिद्ध देश में नृप-नय-नागर । 16

अमरपुरी सी पुरी बसाई एक झील पर ,
 गृह, सुन्दर प्रासाद, वीथियां¹⁴ रुचिर रचाकर ,
 उपवन सघन समेत सुघर ‘संभरपुर’ पाकर
 हुई सलोनी साँभर¹⁵ सुविदित सुषमा-आकर । 17

इनके सुत चौबीस हुए अतिशय बलशाली ।
 सवने अपनी राजधानियां अलग बसा लीं ।
 सन्तति नव की देश-जाति पर मिटनेवाली
 हुई, जिन्होंने यवन-प्रगति में बाधा डाली । 18

‘पृथ्वीराज’ चौहान आदि थे इनके वंशज ,
 रखी देश की लाज जिन्होंने निज सब कुछ तज ।
 पन्द्रह अन्य सुपुत्र ग्रहण कर प्रभु-पद-पंकज
 बिना वंश भव-सिन्धु पार कर गए ईश भज । 19

13. माणिकराव को संभरिराव और लाखन सिंह संभर भी कहते थे ।
 14. गलियाँ, जिनके किनारे दुकानों की पंक्ति हो । 15. साँभर झील जिससे
 नमक भी निकाला जाता है ।

चौहानों में नव पुत्रों की कुरी¹⁶ हुई नव ।
अति समृद्ध हो प्रजा नित्य नव करती उत्सव ।
ज्यों वट वृक्ष विशाल डाल से छोड़ मूल नव
सबको सुदृढ़ बना, फैलाता अभिनव पल्लव । 20

‘अजयराव’ रणधीर, दूसरे सुत संभर के ,
पढ़कर हुए सुविज्ञ योग-नय-धनु-अक्षर के¹⁷ ।
वीर, खड्ग के धनी, विजेता कुशल समर के ;
प्राण सुहृद के, किन्तु काल-सम भय निज अरि के । 21

निज भुज-बल से राज्य बनाकर एक मनोहर ,
नगर बसाकर रुचिर राजधानी कर सुन्दर ,
राज-सभा में किए प्रतिष्ठित विविध मन्त्रिवर ,
ज्यों ग्रह-उपग्रह-युक्त गगन में दीप्त दिवाकर । 22

जिनकी ध्वज फहरी धवल, नभ में चारों ओर ;
रथ-घर-घर¹⁸ घन-घोष¹⁹ सी, सुनकर नाचे मोर । 23

निर्माता दृढ़ राष्ट्र के हुए अमित बलवान
खीची कुल के आदि नृप ‘अजयराव’ चौहान । 24

16. नौ पुत्रों ने वंश की नौ शाखाएं चलाई जो ‘कुरी’ कहलाती हैं ।

17. योगी, नीतिज्ञ, धनुर्धारी और विद्वान । 18. चलते हुए रथ का ‘घर-घर’ शब्द । 19. बादल की गरज ।

उत्तर खण्ड

खीची-यज्ञ

ॐ

वन्दे भारत मातरम्

धन्य-धन्य है वह धरा, धन्य सुरोपम भूप ,
यज्ञ-नाम से लोक-हित-कार्य समय-अनुरूप
जहाँ होते रहे । 1

गूँजा जहाँ पवित्र नित, एक राष्ट्र का मन्त्र ,
बिखरे घटकों का बना, एक सुदृढ़ गण-तन्त्र
परस्पर प्रेम-वश । 2

अजयराव के राज्य में, सभी सुखी सन्तुष्ट ।
कला-हीन¹ नव-चन्द्र-इव वक्र², सकल्मष³, दुष्ट
रहे क्षय-ग्रस्त⁴ नित । 3

सुलभ सभी को सर्वदा, था धन-धान्य यथेष्ट ।
श्रमजीवी निश्चिन्त थे, अधजीवी⁵ निश्चेष्ट
कर्म-फल प्राप्त कर । 4

वेद-पाठ, विद्याध्ययन, अग्नि-होत्र सर्वत्र ,
करते सब आश्रम-निरत⁶, व्यक्त सपुत्र-कलत्र ।
धर्म-रत थे सभी । 5

1. कला-प्रदर्शन असमर्थ/सौलभ, कलाओं से रहित । 2. कुटिल/टेढ़ा ।
3. पापी/कालिमायुषत । 4. नष्ट-प्राय/क्षीण । 5. पापी । 6. चारों आश्रमों का
पालन करते हुए ।

शिक्षण का कर्तव्य निज. करके सांगोपांग,
टाल ईति-भय-आपदा, सकुशल सब राज्याग⁷
विप्र रखते सदा । 6

राजा, रक्षित राष्ट्र, गढ़, मन्त्री, सेना, कोष,
भृत्य, नागरिक, मित्र, सब को ही था सन्तोष ।
पुष्ट सब अंग थे । 7

मन्त्र तेज-युत दूर से ही अरि-शमन-समर्थ,
दृष्ट-लक्ष्य-वेधी विशिख करते मानो व्यर्थ⁸
अजय-तूणीर के । 8

पुण्डरीक⁹ का छत्र था, चामर विकसित काश,
हुआ अजय-अनुकरण में, फिर भी शरद¹⁰ निराश ।
प्राप्त थी श्री न वह । 9

उडुगण-बेला-कुमुद-मिस, नभ-थल-जल-आछोर,
अजय-सुयश को ही विशद, थी विभूति¹¹ सब ओर,
फैलकर छा रही । 10

क्रौंच-माल नभ सघन¹² का उड़कर करती स्पर्श ।
चल तोरण निस्तम्भ¹³ सी बन दर्शाती हर्ष
तले सुवितान¹⁴ के । 11

7. ब्राह्मणों द्वारा विधिवत शिक्षण-कार्य का स्वकर्तव्य पालन होने से ईतियां (कृषि को हानि पहुंचाने वाले छह उपद्रव—बाढ़, सूखा, चूहे, टिड्डी-दल, पक्षी और शत्रु का आक्रमण), भीतियां और आपदाएं नहीं आती थीं, अतः राज्य के सब अंग (जो अगले छन्द में उल्लिखित हैं) सकुशल रहा करते थे । 8. बाण जो दिखाई देते हुए लक्ष्य ही वेध सकते हैं, मानो अनावश्यक से थे, क्योंकि कुशल मंत्रणा पे शत्रु का दूर से ही नाश हो जाता था । 9. एवेत पद्य जो छत्र के समान होता है । 10. शरद ऋतु । 11. सुयश की एवेत विभूति नक्षत्रों, बेला (के फूलों) और कुमुदिनी के बहाने आकाश, भूमि और जल में सर्वत्र फैली थी । 12. मेघयुक्त । 13. बिना खम्भों वाला । 14. सुन्दर णामियाना ।

शोभित सरवर सर्वदा, कमल-कुमुदिनी-युक्त ।
चक्र-मिथुन, कलहंस, बक, प्रमुदित बाधा-मुक्त
रमा करते सदा । 12

पुष्प-रेणु के साथ ले, कमल-गंध, जल-शीत ,
ताली-दल-ताड़ित¹⁵ अनिल, हुआ न श्रमित प्रतीत
सतत सेवक बना । 13

कुंज सघन¹⁶ सहकार¹⁷ के, पिक-पी-गुंजन-पूर्ण¹⁸ ,
करते त्रिविध समीर से, नन्दन-वन-मद¹⁹ चूर्ण ,
मनो ऋतुराज पा । 14

होता दृग-सादृश्य लख²⁰, तृण-मुख चकित कुरंग ।
कमल-कीर-कदली-करी, सबका कर मद भंग²¹
विहरते नारि-नर । 15

उचित समय पर सर्वदा, घन बरसाते नीर ।
सस्य, सालि-संकुल सुखद, सीता²² सरिता-तीर
लहलहाती हरी । 16

एक वर्ष देवात कुछ मित्र-राज्य निकटस्थ ,
अनावृष्टि-पीड़ित हुए, अजय-राज्य था स्वस्थ
यदपि सुप्रबन्ध से । 17

15. ताड़ के पत्तों से ताड़न (मार्ग-दर्शन) पाया हुआ अर्थात् मंद गति वाला । 16. घने । 17. आम । 18. कोकिल का 'पी' शब्द जहाँ गुंजता है । 19. इन्द्र के उपवन (नन्दन कानन) का गन्ने । 20. अपनी आँखों के समान ही लोगों की आँखें देखकर । 21. मुख, नासिका, जंघा तथा चाल से कमल, तोता, केला और हाथी भी लज्जित होते थे । 22. जोती हुई भूमि ।

बीता सकल असाढ़, पुनि गया पुनर्वसु, बीत ।
पुनः जेठ-आवृत्ति²³ सी, सबको हुई प्रतीत ।
मेघ दीखे नहीं । 18

बड़े-बड़े हों ज्यों अधिक, भक्ष्य बनें लघु-जीव,
बढ़ा अनुग²⁴ उदरस्थ²⁵ कर, जेठ²⁶ प्रचण्ड अतीव,
यही जग-रीति लख । 19

सरि सब सिकता-निधि हुई, सर सब खाली पेट ।
बने काठ-भण्डार वन²⁷, वन²⁸ से हुई न भेंट ।
कूप सूखे सभी । 20

सरि-सर सब की छातियां, नीरस फटीं गभीर²⁹,
जहां कभी खिलती रही, सरस पद्मिनी-भीर
तरनि-कर-परस पा । 21

घुसा दरारों-बीच जब तप्त ताल-जल सूख,
स्वैरी सा हँस-हँस मिटा, मिटी न उर की भूख ।
बढ़े निःश्वास ही । 22

आया भी श्वेताश्र³⁰ यदि, करने दिन का त्राण,
लख रक्तम दिवसान्त³¹ वह, भागा लेकर प्राण
छोड़ निशि उडुमयी³² । 23

द्विज लखते पंचांग निज, कृषक-वर्ग नभ-छोर;
घोष चर-स्थल हेरते, पौर नृपों की ओर
देखते त्राण हित । 24

23. अषाढ़ मास और पुनर्वसु नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर भी अनावृष्टि के कारण ऐसा लगता था कि जेठ का महीना पुनः आ गया । 24. पीछे आने वाला, (छोटा भाई) असाढ़ । 25. आत्मसात् । 26. बड़ा, जेठ का महीना । 27. जंगल । 28. जल । 29. गहरी दरारें पड़ गईं । 30. श्वेत बादल । 31. दिवस का रक्तपूर्ण अंत/लाली युक्त संध्या । 32. दिन में घिरे हुए बादल संध्या तक विलीन हो जाने से रात तारों वाली रह जाती थी । यह अनावृष्टि का लक्षण है—लोकोक्ति है “दिन वदरी ओ, रात तरैया; ना जाने दैव काह करैया” ।

जल³³-बिन सब जल से रहे, खग, मृग, नर, जल-जन्तु ।
भग्न-प्राय जीवन³⁴-बिना, सबका जीवन-तन्तु
क्षीण था हो रहा । 25

व्याकुल हो सब देखते, सम्मुख प्राणि-विनाश ।
मृग-जल-लुब्ध³⁵ हुए अमित मृग जल-बिना हताश ;
अन्त पंचत्व³⁶ था । 26

'श्रावण गत³⁷' ये श्रवण-गत हुए अन्ततः शब्द ।
कैसा स्राव³⁸? न कण³⁹ गिरा; सम्मुख भीषण अब्द⁴⁰ ,
खड़ा मुँह खोलकर । 27

नयन-नीर⁴¹ ज्यों कृपण-धन, रहा नयन की कोर ।
रातें भी करने लगीं, बिना ओस की भोर ,
डरी सी काल⁴² से । 28

नभोमास⁴³ का अनुग भी, लख नृप धृत-शर-चाप ,
क्लीव नभस्य⁴⁴ न धर सका, वृष्टि-केतु नभ-चाप⁴⁵ ।
यत्न कर सब थके । 29

वर्षा गत ? आई कहाँ ? बीत गए दो मास ।
शरदोत्सव क्या ? उत्स विन, किञ्चिन्मात्र न प्यास
धरा की मिट सकी । 30

33. पानी । 34. पानी । 35. भ्रान्तिपूर्ण जल की प्रतीति से आकृष्ट; रेगिस्तान में भूतल अत्यधिक गर्म होने के कारण वृष्टि-भ्रम हो जाता है और दूरी पर पानी लहराता हुआ सा प्रतीत होता है । प्यासे हिरन उसकी ओर दौड़ते हैं और दौड़ते-दौड़ते ही प्राण दे देते हैं (मृग-तृष्णा) । 36. मृत्यु । 37. बीत गया । 38. वृष्टि । 39. पानी की बूंद । 40. वर्ष । 41. आँसू जो (मारे गर्मी के निकलते ही सूख जाते थे अतः) आँखों के कोनों तक ही रह जाते थे । 42. अकाल । 43. श्रावण । 44. भाद्रपद (जो अनेक धनुषधारी राजाओं को देखकर तथा किसी के पीछे रहकर भी धनुष-धारण करने में असमर्थ हो वह क्लीव ही है) । 45. इन्द्र-धनुष, जो वृष्टि का संकेत करता है ।

पार्थ-विशिख-हत-भूमि-इव रवि-कर जगे शरीर
विकल उगल उदरस्थ भी, रोम-कूप से नीर,
हुए हलके सभी⁴⁶ । 31

हल की जल-बिन भूमि में, गति भारी हो जाय ।
हलकी⁴⁷ जल-बिन त्यों हुई भारी⁴⁸ सबकी काय ;
अशक्त नितान्त थी । 32

घन-भव-चपलानल यथा, घन-जल शान्त करे न⁴⁹,
श्रम-भव-जठरानल-शमन सम्भव श्रम-जल से न⁵⁰ ;
तभी श्रम-विरत जन । 33

चले छोड़ घर-बार निज, अपर देश को लोग ।
जैसे योगी जगत के, नज दें सारे भोग
योग की प्राप्ति हित । 34

छूट गईं प्रिय वस्तुएँ, बिछुड़े सुहृद अभिन्न ।
फिरे अन्न-जल खोजते, नर-नारी अति खिन्न,
तनुत्यज पुरुष⁵¹ इव । 35

देश-देश का भ्रमण कर, बिता एक-दो मास,
अजय-राज्य की ओर, ज्यों सद्गुण सज्जन-पास
हुए आकृष्ट जन । 36

46. जैसे अर्जुन का बाण लगने से (भीष्म की प्यास बुझाने के लिए) भूमि से जल निकल पड़ा था, वैसे ही सूर्य की किरणें लगने से शरीर भी भीतर का पानी रोम-कूप से (पसीने के रूप में) निकालता था । इस प्रकार लोग हलके (कृश, दुर्बल) हो रहे थे । 47. कृश होने के कारण । 48. असमर्थता के कारण शरीर भी उठाया न जा सकता था, अतः भारी लगता था । 49. बादलों से उत्पन्न बिजली की अग्नि, वर्षा के जल से नहीं शान्त होती । 50. परिश्रम से उत्पन्न क्षुधा की अग्नि श्रम-जल(पसीने) से नहीं बुझती । 51. शरीर त्याग करने वाली आत्मा ।

पाकर जैसे नद-नदी, सोमि-सिन्धु-संयोग,
बन्धु-सदृश आदृत हुए, पहुँचे जितने लोग;
भूल पथ-श्रम गए । 37

अजय-मन्त्रि-मण्डल रहा जागरूक दिन-रात ।
अन्य देश में रह रहे, हुआ न उनको ज्ञात,
रहे शरणार्थि जो । 38

ठौर-ठौर पुर बन गए, अस्थायी रमणीक ।
पुनर्वास की शीघ्र ही, हुई व्यवस्था ठीक
राज्य की ओर से । 39

अस्थायी आवास थे, सब सुख-सुविधा-युक्त ।
पा यथेच्छ आजीविका भी सब चिन्ता-मुक्त
हो गए शीघ्र ही । 40

किन्तु राज्य हों अधिकतर जब दुरवस्था-ग्रस्त,
वैमनस्य पालें सभी, तो न रहें क्यों त्रस्त
विदेशी शत्रु से ? 41

लख पाए नृप अजय के चार-चक्षु⁵² आसार⁵³
पश्चिम से आक्रान्ति के; और भनक साधार
मिले शंकित हुए । 42

राष्ट्र-सुरक्षा-हेतु गुन आवश्यक तत्काल,
राज्याध्यक्षों का किया सम्मेलन सुविशाल,
बहाने यज्ञ के । 43

उषा-अनन्तर कर⁵⁴-निकर का रवि करे प्रसार,
त्यो फौजा सोहार्द्र-कर⁵⁵, भेजे सीमा-पार
कुशल चर अजय ने । 44

प्रेम-निमन्त्रण यज्ञ का, सानुरोध सब भूप ,
दूतों से पा, आ गए, जहां प्रतिष्ठित यूप⁵⁶ ,
भजय के राज्य में । 45

ज्यों-ज्यों था रवि बढ़ रहा, मकर-अयन⁵⁷ की ओर ,
त्यों-त्यों जन-सागर बढ़ा, जिसका ओर न छोर ,
माघ के मास में । 46

रहा मास-पर्यन्त वह पावन यज्ञ महान ।
घी-खिचड़ी भोजन मिला, सबको जीवन-दान -
स्वरूप अकाल में । 47

था खीची-मख में निहित, निखिल राष्ट्र का क्षेम ।
भूप भजय के हृदय में एक राष्ट्र का प्रेम
उमड़ था वह चला । 48

शंसा⁵⁸ अनभीप्सित जिसे, अजय विनय-नय-युक्त ,
नृप-नय-नागर-नृपति⁵⁹ लख, कार्य समय-उपयुक्त ,
प्रभावित थे सभी । 49

अनभीप्सित मणि प्राप्त हो, किन्तु न ईप्सित लोष्ट⁶⁰ ।
अजय-सुयश-गाथा-स्फुरित⁶¹, थे जन-जन के ओष्ठ ।
कीर्ति दुगुनी बढ़ी । 50

खीची-वाड़ा गण हुआ, वे खीची चौहान ।
मुक्त-हस्त नृप-वर्ग ने, दिया अजय को मान
राष्ट्र-नायक बना । 51

कालान्तर में नगर खेलचीपुर कहलाया ,
जहां गगन-चुम्बी विशाल सित ध्वज लहराया ।

56. यज्ञ का स्तम्भ । 57. माघ के महीने में सूर्य मकर राशि में होता है और पृथ्वी की मकर रेखा पर सीधा चमकता है । 58. प्रशंसा । 59. राजनीति-कुशल सभी राजा । 60. (मिट्टी का) ढेला । 61. अजयपाल के यश-गान हिलते हुए ।

रही राजधानी वह खीची चौहानों की ;
 झुकती थीं जिस ओर दृष्टियां नरनाहों की ;
 नत यथा कोष⁶² की ओर हों शत-सहस्र दल कमल के ।
 थे क्योंकि सफल नेतृत्व नित, करते वंशज अनल के । 52

अजयराव के आत्मज 'दूलाराव' नाम से
 हुए लोकप्रिय बाल-अंशुमाली ललाम से ।
 विद्या चारों⁶³ पार कर गए वे दिशि⁶⁴ जैसे ,
 मेधावी निज गुण-सम्पन्न कुशाग्र बुद्धि से ।
 सीखे समन्त्र शस्त्रास्त्र सब शीघ्र तात से तनय ने ।
 अनुपम धन्वी की क्योंकि थी, ख्याति प्राप्त की अजय ने । 53

गो-द्विज-प्रिय, वर्णाश्रम-रक्षक, नृप-नय-नागर ,
 निज सुत को सर्वथा नृपश्री योग्य बनाकर ,
 सोचा नर-पति ने, कि तृतीयाश्रम अपनाकर ,
 सफल करें वार्धक्य, योग लें वन में जाकर ।
 मत परम्परा सम्मत हुआ, संसद को भी मान्य जब ,
 अभिषिक्त राष्ट्र-नायक हुए 'दूलाराव' वदान्य तब । 54

जब गन्ध विदेशी आक्रमण की कुछ पाई वीर ने ,
 होता⁶⁵ सब खीची-यज्ञ के एक राष्ट्रवादी बने । 55

62. वीज-कोष । 63. कोटिल्य के अनुसार तर्कशास्त्र, वेद विद्या, कृषिकर्मादि और अर्थशास्त्र (यानी साम, दाम, दण्ड आदि राजनीति) और मानव धर्म सार के अनुसार आन्वीक्षिकी, अग्नी, यार्ता और दण्डनीति, ये चारों विद्याएं । 64. दिशाओं को (जैसे सूर्य पार कर जाता है) । 65. (खीची-यज्ञ में) आहुति देने वाले (सम्मेलन में भाग लेने वाले) ।

दूसरी किरण

धीर धारू

पूर्व खण्ड—प्रबल प्रतिरोध
मध्य खण्ड—धारू-विजय
उत्तर खण्ड—पुत्र-शोक

ॐ

राष्ट्र-वन्दना

कुल-पर्वतों ने¹ अंग जिसके दृढ़ कुलिश² जैसे किए ;
सुर तक सिहाते³ भाल उन्नत चूम पाने के लिए ;
अति श्रेष्ठ स्वर्गोपम धरा मिल सोलहों धारण करें ।
हम मातु-पितु-गुरु-तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें ।

1. सोलह कुल पर्वत । इनका विवरण अन्तर्दृष्टि के अनुच्छेद 4.3 (पृ. 48-49) में दिया जा चुका है । 2. वज्र । 3. ईर्ष्या करते, ललचाते हैं (देवता दिवौकस् अर्थात् आकाश में रहने वाले कहे जाते हैं । वे भी भारत का उन्नत भाल चूमने के लिए उत्सुक रहते हैं) । अन्तर्दृष्टि अनुच्छेद 4.3 (पृ. 51-52) भी देखिए ।

पूर्व खण्ड
प्रबल प्रतिरोध

वन्दे भारत मातरम्

हे मातृ-भूमे, हम पुत्र तेरे,
सदा रहें निर्गद-काय-स्वामी ।
दोषायु हों, किन्तु सदैव तेरे
लिए रहें, मां, बलि-मार्ग-गामी¹ । 1

हे मातृ-भूमे, सरि-मेरु तेरे,
हमें रहे हैं सुत मान सेते ।
खेती-किसानी, व्यवसाय को भी
सदा रहे जीवन दान देते । 2

सुधान्य सम्पन्न, समृद्धिशाली,
प्रसिद्ध था देश सुवर्ण-पक्षी ।
निहारते थे जिसको विदेशी
लुब्धाक्ष² ज्यों व्याध विहग-भक्षी । 3

प्राचीन है भारत-भू हमारी,
जहां पली संस्कृति विश्व-वारा³ ।
वही जहां मानव-प्रेम की है
उन्मार्गगा⁴ नित्य अजस्र⁵ धारा । 4

1. तुलना कीजिए अथर्ववेद 12/1/62 से, देखिए वेदवाणी (पृ० 92-93) ।

2. ललचाई हुई आंखों से । 3. सबके लिए हितकारी । 4. उन्नति की ओर ले जाने वाली । 5. निरन्तर ।

खीची नृप ने भार धरा⁶ नव-प्राप्त धरा का ;
 हो उद्विग्न बलात् न ऐसा मन में ताका ।
 किया सदय हो भोग यथा नव-परिणीता का ।
 उस नृप से थी दीप्त सभा शशि से ज्यों राका ।
 था वर्ष धरा-युग-ऋषि⁷ अशुभ हुआ सिन्धु आक्रान्त जब
 रण में दाहिर का पक्ष ले, पहुँचे 'दूलाराव' तब । 5

कासिम-सुत यवनेश मुहम्मद⁸ था चढ़ आया ;
 स्वर्ण भूमि लेने की आशा भी सँग लाया ।
 पा प्रतिरोध परन्तु सबल वह भी घबड़ाया ।
 मिलकर सबने दस्यु देश से दूर भगाया ।
 पर खेत रहे खीची नृपति; तब सुत 'गौतमराव' को
 नृप घोषित संसद ने किया, विजयी विदित प्रभाव को । 6

तदनन्तर नरनाह 'नाहसी देव' नाम के
 हुए लोक-प्रिय भक्त देश-धर्मार्थ-काम के ;
 ज्ञाता अनुपम दण्ड-भेद-युत साम-दाम के ,
 जिनके इंगित मात्र मिले नयनाभिराम के
 नर-पाल बना-विगड़ा अमित करते थे क्षण मात्र में ।
 फलवती वसुमती भी हुई, विद्या सी सत्पात्र में⁹ । 7

'देव नाहसी' के युग पुत्रों ने बलशाली
 आक्रान्ताओं हेतु तीक्ष्ण तलवार निकाली ;
 आश्विन-कार्तिक मिले हरें घन ज्यों करमाली¹⁰ ,
 अथवा करके प्राप्त मरुद्गण ही गतिशाली ;
 त्यों हुए सुदुःसह सुवन-सह, नृपति शत्रु-दल के लिए ।
 हो दूर दस्यु दल देश से, अथक यत्न इसके किए । 8

6. धारण किया । 7. सं० 741 विजयी । 8. अरब सरदार मुहम्मद-विज-कासिम जो खलीफा का भतीजा और दामाद था । 9. जिस प्रकार सत्पात्र को पाकर विद्या फलवती होती है, उसी प्रकार नाहसीदेव सरीखा कुशल शासक पाकर पृथ्वी सम्पन्न हुई और उसका वसुमती नाम सफल हुआ । 10. सूर्य ।

अग्रज 'राव प्रसंग' सुशोभित सिंहासन पर
 राम-लखन-सम हुए प्राप्त कर 'पीलन पंचर¹¹' ।
 'देवन सी' नरपाल देवपति से तदनन्तर,
 जिनके दत्तक हुए 'मलेसी राव' नाम धर ।
 फिर 'सिंह राव' आदिक हुए, तेजस्वी दिवसेश से ।
 सब यत्नशील सतत रहे, शत्रु निकालें देश से । 9

किन्तु देश में युग-परिवर्तन तो था हो आरम्भ चुका ।
 यत्नशील सन्तत रहते भी काल-चक्र क्या कभी रुका ?
 स्वर्ण-काल इस पुण्य-भूमि का देख दस्यु आकृष्ट हुए ।
 शनैः-शनैः पंजाब पार कर, दिल्ली के भी छोर हुए । 10

एक-एक कर देशी राजे कई दमन के लक्ष्य हुए ।
 धर्म-रणज्ञ विमूढ़ विदेशि-गृहीत अधर्म-समक्ष हुए¹² ।
 कृत्याकृत्य-विवेकशीलता ही शिव-धर्म सदा वरती ।
 धर्माधर्म-निरूपण जग में सदा परिस्थिति ही करती । 11

लूट-मार, सामूहिक हत्या, बलात्कार भी मनमाना
 करते हुए सैन्य का बढ़ना, भयातंक ही फैलाना,
 खेत और वस्तियां जलाना, जिनका आम तरीका हो,
 उनसे सरल-समरकर्मों को क्यों न मात्र असफलता हो ? 12

ईर्ष्यानिल में जलते जो लख स्वर्गोपम सम्पन्न मही ।
 पाते हों सन्तोष अतुल उस को उजाड़ देने में ही ।
 उन पर दया दिखानी तो है निर्बलता का केतन ही ।
 ऐसे आततायियों को है क्षमा-दान तो धर्म नहीं । 13

11. पीलन पंचर या पील पंचर लक्ष्मण की भांति ही अपने बड़े भाई के भक्त थे । 12. धर्म-युद्ध करने में कुशल (देशी नरेश) अधर्म का आश्रय लेकर युद्ध करने वाले विदेशी शत्रुओं के सामने किकर्तव्य-विमूढ़ हो गए ।

क्या अधर्म है, और धर्म क्या, इसका निश्चय नहीं सरल¹³ ।
शास्त्र-वचन या आप्त-वाक्य ही सदा न देते पूरा हल ।
ऊपर से जो चमक रहा है, सदा न वह सोना होता ।
बिना विचारे जो करता, दुख-सागर में खाता गोता । 14

कृत्यों की वरीयता समुचित समझ नहीं जो पाता है,
व्यर्थ लगा वह नाम धर्म का जग में धोखा खाता है ।
गो सम्मुख लख छिपे शत्रु पर वार न करना धर्म नहीं ।
धोखा खा-खाकर भी समझे, हाय, धर्म का मर्म नहीं । 15

भूल चुके थे, चैत्यक नग पर वृषभ-रूप-धारी निशिचर
की ही खिचवा खाल बृहद्रथ ने था निर्भय किया नगर¹⁴ ।
भूल चुके, जब वत्सासुर¹⁵ को कान्हा ने पहिचान लिया,
उसे उन्होंने मार डालने में क्या तनिक विलम्ब किया ? 16

13. तुलना कीजिए :

किं कर्म किमकमति क्वयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्षसेऽशुभात् ।

श्रीमद्भगवद्गीता 4/16 ।

अर्थात् क्या करने योग्य है और क्या नहीं करने योग्य है, इसका निर्णय करने में वृद्धिमान लोग भी धोखा खा जाते हैं । इसलिए (कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं कि) क्या करना है, यह मैं तुझे बताऊंगा जिसको जानकर तू अशुभ से मुक्ति पा जाएगा ।

14. कहा जाता है कि मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज की सेनाओं के सम्मुख गायों की कतारें खड़ी कर दी थीं । धर्म-भोर भारतीय सैनिक गो-बध के पाप के डर से हमला न कर सके । उन्हें धर्म का अर्थ नहीं बताया गया था । महाभारत सभापर्व 21/16-17 के अनुसार जरामंघ के पिता बृहद्रथ ने चैत्यक पर्वत पर वृषभ नामक एक वृषभ-रूप-धारी मांस-भक्षी राक्षस को युद्ध में मारकर उसके चमड़े से तीन नगाड़े तैयार कराए और उन्हें नगर में रखवा दिया था । नगाड़े बजते थे तो वहां दिव्य कूलों की वर्षा होती थी और आवाज एक महीने तक गूँजती रहती थी ।

15. वत्सासुर-वध कथा श्रीमद्भगवत के दशम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में विस्तार से दी हुई है । यहाँ श्री गुरुदेव जी कहते हैं :

पुनः अरिष्ठासुर¹⁶ जब आया वृषभ-रूपधर भयकारी ,
भूमि खुरों से खोद-खोद भू-कम्पन उपजाता भारी ,
उसको भी तो सींग पकड़कर विहँस कृष्ण ने पटका था ,
गो-हत्या-भय त्याग, दिया खल को प्राणान्तक झटका था । 17

लेकिन चस्का पा ये खल तो बारम्बार लगे आने ,
शान्त समृद्ध आर्य-जनता पर भाँति-भाँति के दुख ढाने ।

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्स यूथ गतं हरिः
दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥
गृहीत्वापरपादाभ्यां सह लांगूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ॥

श्रीमद्भागवत 10/11/42-43 ।

अर्थात् बछड़े के रूप में उस राक्षस को बछड़ों के झुण्ड में घुसा हुआ श्रीकृष्ण ने देखा और बलराम जी को दिखाते हुए धीरे-धीरे वे मुग्ध से हो गए । फिर उन्होंने उसके पिछले दोनों पैरों तथा पूँछ को पकड़कर घुमाया और कँथ (के वृक्ष) के सामने पटककर मार डाला ।

16. अरिष्ठासुर-वध की कथा भी श्रीमद्भागवत में है । श्री शुकदेव जी कहते हैं :

अथ तर्ह्यगितो गोष्ठमरिष्ठो वृषभासुरः ।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥
रम्ममाणः खरतरं यदा च विलिखन् महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं बप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥

×

×

×

तमापतन्तं स निगृह्य शृंगयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।

निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥

श्रीमद्भागवत 10/36/1, 2, 13 ।

अर्थात् तब गोशाला में भयानक डीलवाला अरिष्ठ नामक वृषभ-रूपधारी असुर पृथ्वी को खुरों की चोटों से कँपाता हुआ जोर से रँभाता हुआ भूमि को पैरों से खरोंचता हुआ पूँछ उठाए हुए मिट्टी की दीवारों को सींगों की नोकों से उपाटता हुआ आया ।... इस प्रकार आते हुए वृषभासुर को दोनों सींग पकड़कर भूमि पर गिराकर पैर से दाबकर गीले कपड़े की भाँति निचोड़ते हुए से, कृष्णजी ने सींग उखाड़कर मार डाला और वह गिर पड़ा ।

गटन सोमनाथ तक धरती रौंद अनेक प्रयत्नों से,
प्रमित काफिले दस्यु ले गए लाद-लादकर रत्नों से । 18

हुआ सामना जगह-जगह पर यद्यपि वीर नरेशों से ;
कई बार लोटा मुँह की खा, आकर दस्यु विदेशों से ;
धीरे-धीरे किन्तु विदेशी फैले भारत पर ऐसे,
शशि निष्प्रभ होने पर माधव¹⁷ के रवि का आतप जैसे । 19

लालच बढ़ता गया यथा घी पाकर ज्वाला पावक की ।
पाकर भोग विषय-तृष्णा सी शत्रु-सैन्य भी नहीं छकी ।
प्रजा निरीह अरक्षित ही थी अपना रक्त बहाकर भी ।
विजयी म्लेच्छ बलात् हरण करते थे धन-जन-धर्म सभी । 20

बुत-शिकनी¹⁸ का हुक्म गजनवी लाया अल्ला-ताला से !
काफिर-हत्या किसी भांति हो तीर, तेग, या भाला से !
कुफ्र मिटाना अग धर्म का बना खुदाई वीरों के !
गली-गली दल लगे घूमने कठमुल्लाओं-पीरों के । 21

अवसर पाकर करगत करके सिंहासन भी दिल्ली का,
भोगा वह ऐश्वर्य, इन्द्र का था जिसके सम्मुख फीका ।
किन्तु शीघ्र मद-मत्त हो गया शासक-दल सत्ता-धारी ।
ज्यों जल-धार नभोजल¹⁹-धारण कर हो नद विनाशकारी । 22

साधन केवल बना भोग का, था जो गुरु दायित्व कभी ।
हुए इसे अपनाने को ही, बड़े बड़े दुष्कर्म तभी ।
साधारण थे कृत्य अनंतिक, वश मिटाना स्वामी का,
निर्दोषों की निर्मम हत्या, निवासिन अधिकारी का । 23

पुनरावृत्ति कुकृत्यों की, पर, रोक न पाते शाह कभी ।
क्रीत दास ही बन जाते थे कालान्तर में शासक भी ।
उगते जालच की धरती पर घुणा, तेष, छल, हत्या ही ।
भाई भाई का बन जाता बैरी पुत्र पिता का ही । 24

गंगा-तट पर बही कड़े में शीतल²⁰ शोणित की धारा ।
छिदा जलालुद्दीन शाह का सिर जिस भ्रातृज²¹ के द्वारा ,
वही अलाउद्दीन तख्त पर चढ़ा, दीन²² का बन प्यारा ।
बर्बरता से खिलजी नृप की परिचित देश हुआ सारा । 25

आंखें कढ़वा डाली उसने चाचा के बच्चों की थीं ।
बन्दी करके उन्हें न मानी किंचित् भीति खुदा की थी ।
उस अदूरदर्शी ने डाली परम्परा जिन कृत्यों की ,
नित्य बढ़ाते रहे धृष्टता वही कुचाली भृत्यों की । 26

नव अधिकारी, नव शासन पा, हुई विधा आरम्भ नई ,
पा जिसका गुरु भार भूमि भी भय से सहसा काँप गई ।
यद्यपि यत्न कुछेक प्रजा के तुष्टीकरण²³ निमित्त हुए ,
लेकिन लगे मतान्ध शासकों द्वारा कर²⁴ भी नए-नए , 27

जिनका परिमार्जन होना क्या उनसे संभव कभी हुआ ?
तुहिन²⁵ वृष्टिसे क्या कुवृष्टि²⁶-हत सस्य प्रफुल्लित कभी हुआ ?
शासक-गण ने स्वकर्तव्य जब भोग मात्र ही था माना ,
राज-द्रोह ही स्वकर्तव्य सब लोगों ने भी पहिचाना । 28

क्या कोई आनन्द मित्रता का कुमित्र से पाता है ?
क्या कुदार-पति भी रख पाता अपने घर से नाता है ?

20. बिना चेतावनी के वृद्ध खिलजी सम्राट् जलालुद्दीन फीरोजशाह का सिर विश्वासघात पूर्वक काटा गया; अतः अनुचित होने तथा सम्राट् के वृद्ध होने के कारण रक्त ठण्डा था (तुलना कीजिए : cold-blooded murder) । 21. भतीजा अलाउद्दीन खिलजी । 22. धर्म । 23. अलाउद्दीन का राज्य सम्पन्न था, धन-धान्य की प्रचुरता थी, समय सस्ते का था । 24. जजिया आदि कर । 25. पाला । 26. सूखा ।

खोटा शिष्य पढ़ानेवाला कब यश-भाजन होता है ?
 त्यों ही कभी कुशासन से क्या सुखी प्रजा-जन होता है²⁷ ? 29

देशी राजे नाम चाहते मिटा विदेशी का देना ।
 भूल कभी सकता आहत अहि अवसर पा बदला लेना ?
 इतस्ततः खल-राज्य मिटाने हेतु यत्न तो अमित हुए ।
 पर उडुगण क्या करें, मिटे कब तमस, बिना शशि उदित हुए । 30

सभी दृष्टियां टिकी हुई थीं, खीची-गण के स्वामी पर,
 एक राष्ट्र का मन्त्र फूंकते वीर अनल-अनुगामी पर ।
 खीची नृप भी लगा रहे थे कुछ अनुमान परिस्थिति का ।
 सोच रहे थे, कैसे रोकें और बिगड़ना यों स्थिति का ? 31

था रक्षा हित जिनका हुआ उद्भव, भारतवर्ष की,
 उन खीची ने ही ठान ली खिलजी से संघर्ष की । 32

27. तुलना कीजिए :

कुराज राज्येन कुतः प्रजा सुखं, कुमित्र मित्रेण कुतोऽस्ति निर्वृतिः ,
 कृदार दारदच कुतो गृहे रतिः, कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ।

चाणक्य नीति ।
 अर्थात् दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख मिलना असंभव है । धोखेबाज मित्र
 की मित्रता से आनंद, दुष्ट स्त्री को पत्नी बनाने से घर में प्रीति और खोटे शिष्य
 को पढ़ाने वाले को यश मिलना असंभव है ।

वन्दे भारत मातरम्

हे शक्ति, तुम्हीं हो देवि, हमारी पूजार्हा पात्री ,
पा संग तुम्हारा ही तो तरते सब जीवन-यात्री ।
तुम आत्मा-प्राण-संघ एकादश रुद्रों¹ की संगी ,
जो विश्व बनाते वास-योग्य उन वसुओं² की अंगी , 1

जो देते हैं यज्ञों में आहुति, जो प्रकाश लाते ,
जो होते हैं बलि सदुद्देश्य पर, जो प्रसाद पाते ,
सब आदित्यों³ को, वरुण-इन्द्र को, त्वष्ठा⁴ को भी तो ,
सामर्थ्य तुम्हीं देती, त्वाष्ठी⁵, दे दो हमको भी तो । 2

1. रुद्र ग्यारह हैं : शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा, ये रुद्र इसलिए कहलाते हैं कि जब ये शरीर छोड़ते हैं तब रुलाते हैं । वेद में रुद्र शब्द अग्नि, मित्र, वरुण, पूषा, सोम आदि के लिए भी आया है । बृहत् हिन्दी कोश (ज्ञान मण्डल वाराणसी) के अनुसार रुद्र एक प्रकार के 11 गणदेवता हैं, जिनकी उत्पत्ति सृष्टि में असफल ब्रह्मा के मुख से मानी जाती है । 2. सब में बसनेवाले, या सृष्टि को वास-योग्य बनाने वाले । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वसु आठ हैं; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र । 3. संवत्सर के बारह महीने ही बारह आदित्य हैं । काल का नियमन यही करते हैं, इसलिए इन्हें आदित्य कहते हैं । 4. निर्माण का देवता (जो संहार करके निर्माण करता है), विष्वक्कर्मा, देवशिल्पी । 5. शक्ति का कल्याणकारी स्वरूप—देवी ।

अजित⁶ अनुज निज 'जैत सिंह' युत 'रत्न सिंह' कुल-केतु हुए ।
 पुरुष-सिंह युग अनल-वंश में अनल शत्रु-तृण-हेतु हुए ।
 व्याधि-मूल-मल⁷ किन्तु बड़ा अरि-रूप अत्यधिक जब रण में ,
 दबकर अग्रज 'रत्नसिंह' नर-रत्न सो गए प्रांगण में । 3

किन्तु सुपुत्र वीर 'धारू' ने स्थान पिता का शीघ्र लिया ।
 वीर-वाहिनी ले अनन्त अरि-दल पर धावा बोल दिया ।
 इधर चली चतुरंग चमू⁸ घन-नाद तूर्य द्वारा⁹ करती ;
 उधर शाह¹⁰-मुख पर विवर्णता भी धीरे-धीरे बढ़ती । 4

राज-पुत्र जिस राज्य हेतु थे करते कुत्सित कर्म अमित ,
 उसे लिया धारू ने केवल जनादेश ही मान उचित ।
 सेना और प्रजा सब समझी, वही रत्न¹¹ ही फिर आए ;
 न श्री¹² मात्र, सब गुण भी उनके, थे अविकल उसने पाए । 5

अन्तर मात्र आयु में, वह भी जोश बढ़ाने वाला था ।
 तभी पिता-कृत अनुष्ठान नव नृप¹³ ने तुरत सँभाला था ।
 क्षात्र-धर्म का पालन करते सोए जो समरांगण में ,
 शोच्य प्रजा के कहाँ ? रहे वे नहीं तनय के भी मन में । 6

रत्न गेंदाकर¹⁴ जो कण¹⁵ मुक्ता¹⁶ मान दृगों ने अपनाए ,
 अभिनव निर्णय¹⁷ से गत-भ्रम से नहीं देर तक रख पाए¹⁸ ।
 रख रक्षार्थ नगर में कुछ भट, नृप ने स-बल¹⁹ प्रमाण किया ।
 उत्तरंग²⁰ ज्यों शोण²¹ गंग को, यवन-सैन्य को रोक लिया । 7

6. जिसे कोई जीत न सका हो । 7. अधिक कूड़ा-कारकट में दबकर अग्नि भी बुझ जाती है । 8. सेना । 9. तुरही द्वारा मेघ जैसी गंभीर ध्वनि । 10. बादशाह अलाउद्दीन । 11. रत्न सिंह । 12. राज्यलक्ष्मी । 13. नए राजा धारू सिंह । 14. रत्न सिंह रूपी रत्न खोकर । 15. अधु-कण । 16. मोती (रत्न की पूर्ति के विचार से) । 17. बिलकुल नया (धारू सिंह का युद्ध-विषयक) निर्णय । 18. आंसुओं की मोती मान लेने से रत्न की पूर्ति नहीं हो सकती, इस प्रकार भ्रम का निवारण हो जाने पर वे मोती-रूप आंसू भी लोभ देर तक नहीं रख पाए । (धारू सिंह के निर्णय से सबकी प्रगल्भता हुई और युद्ध भूल गया—आंसू सूख गए) । 19. सेना सहित । 20. ऊंची जड़ों वाली । 21. सोन नदी ।

बढ़ी सिन्धु सेना धारु की, अरि की अरब समुद्र बनी ;
दोनों की उत्ताल तरंगें टकरातीं कर गरज घनी ।
हय-टापों से उत्थापित²² रज गज-कर्णहित²³ हो ऊपर
छाई नेत्र निमीलित कर अवरोध बना रवि-मण्डल पर । 8

धारु-ध्वजिनी²⁴-धवल-ध्वजाएं धूलि-भरी उड़तीं ऐसे ,
आविल-नव-जल²⁵-मध्य मीन-दल चंचल शोभित हो जैसे ।
सघन धूलि में चक्र-शब्द ही रथ, घण्टा-ध्वनि ही हाथी ,
और स्वामि-जय-घोष बताता, सम्मुख रिपु है या साथी । 9

सघन तिमिर²⁶ में विद्युत्-द्युति से खड्ग-कृषाण चमकते थे ।
झड़ी लगाकर कृत-प्रतिकृत शर²⁷ उभय पक्ष से चलते थे ।
रज-घन²⁸ चीर हताहत-हय-गज-सैनिक-रक्त-प्रवाह चला ।
मानो रजनी²⁹-तिमिर-विनाशक सहसा सहस्रांशु³⁰ निकला । 10

हुआ तुमुल संग्राम, भूमि पट गई रुण्ड-मुण्डों से थी ।
देह अनेक गजस्थ भटों की रुकी दन्त-शुण्डों³¹ से थी ।
कुछ अश्वारोही मूर्छित हो, अश्व-ग्रीव से लिपटे थे ।
धनु³² से गाले यथा रुई के, ऐसे प्यादे उड़ते थे । 11

धारु धन्वी कभी यहां, तो कभी वहां जा लड़ता था ।
जिससे सैनिक पार न पाते, उससे ही जा भिड़ता था ।
दायां हाथ तूण-मुख पर, कर वाम धनुष पर शोभित था ।
नृप-कृत मूर्वी³³-घोष-तरंगों से सब अरि-दल कम्पित था । 12

22. घोड़ों की टापों से उड़ाई हुई । 23. हाथियों के कानों की चोट खाकर (कान हिलने से और भी ऊंची होकर) 24. सेना । 25. नया (प्रथम वर्षा का) पैला पानी । 26. अंधेरा (धूल के कारण) 27. एक ओर से चलाए हुए और उनका प्रतिकार करने के लिए विपक्षी द्वारा फेंके हुए बाण । 28. धूल का बादल । 29. रात्रि । 30. सूर्य (जो निकलते समय चारों ओर लाली फैलाता है) । 31. हाथियों के सवार घायल होकर गिरते थे जिन्हें स्वामिशपत हाथी अपनी सूंड तथा दांतों पर रोक लेते थे । 32. रुई धुनने की धुनकी । 33. प्रत्यंचा ।

निमिष मात्र में ढेर लग गया कटे हुए अरि-माथों का ,
जिनमें ओंठ सरोष फड़कते, दिखता कटकट दाँतों³⁴ का ।
भीतर थी हुंकार भरी भ्रू-भग दीखती थी अब भी ।
कतिपय सकर निरस्त्र कर रहे प्रबल वार से ही³⁵ अब भी । 13

धारू ने अरि के ढेरों सिर काट धरा आच्छादित की ,
मानो क्षुद्रा-व्याप्त³⁶ हो रही वृहत् पिटारी माक्षिक³⁷ की ।
छिन्न-बन्ध³⁸ हो घोड़े भागे तज-तज रथ भग्नाक्ष पतित³⁹ ।
मुक्त हुई बन्दिनी जा रही थीं जो अबलाएं अपहृत । 14

किन्तु उत्तरोत्तर⁴⁰ सेना की नई पक्तियां आती थीं ।
अन्त-रहित लहरों सी धारू-धनु-तट⁴¹ से टकराती थीं ।
आखिर सबने मिल, एकाकी खीची नृप को घेर लिया ।
सब सेनांग सहित अरि-दल ने ककट⁴²-भेदी वार किया । 15

तभी दृष्टि धारू की पहुंची अरि-दल के सेनापति पर ,
वचा-वचा सा जो वारों से रहा दूर ही था दिन भर ।
सिंह-नाद कर उसको सत्वर ललकारा उस सुकृती⁴³ ने ,
इन्द्र-चाप-चिह्नित नव घन की शोभा धर शुभ-प्रकृती ने । 16

34. क्रोध में सैनिक दांत कटकटाते थे और उनके होंठ भी फड़कते थे ।
सिर अचानक कट जाने पर कुछ देर तक होंठों की फड़क जारी रहती थी, जिससे
दांत कटकटाने की स्पष्ट मुद्रा भी दीखती थी, क्योंकि चेतनाहीन होने के पहिले की
अन्तिम अवस्था कुछ देर तक अपरिवर्तित रहती है । 35. क्योंकि सिर कटने पर
शरीर तुरन्त निश्चेष्ट नहीं होता । 36. मधु-मक्खियों से छाई हुई । 37. शहद
की पिटारी (छत्ता) 38. बंधन (रस्सियां) टूटने पर । 39. धुरा टूटने से गिरे
हुए । 40. एक के पीछे एक । 41. जैसे सधुव्र की लहरें आ-आकर किनारे से
टकराती हैं, उसी प्रकार सेना की पक्तियां धारू सिंह के धनुष से टक्कर लेती थीं ।
42. कवच । 43. पुण्यारमा, धारू सिंह (के लिए प्रयुक्त) ।

वज्रोपम कुशाग्र-फल-सायक छोड़ा शीघ्र धनुर्धर ने,
अरि-सेनापति-वक्ष शिलोपम कठिन⁴⁴ लगा जिससे फटने ।
सघन-अमा-छवि-देह⁴⁵ प्राप्त कर तड़ित-तुल्य⁴⁶ शर-फल चमका ।
दिल्ली में दूरस्थ शाह का उसी समय माथा ठनका । 17

आंखों के आगे अँधियारा पल-पल बढ़ता जाता था⁴⁷ ।
बेचैनी में बादशाह निज देह सँभाल न पाता था ।
थे वजीर भी चकित देख यह दशा अचानक स्वामी की ।
किन्तु खो रहे थे भय से वे सभी चपलता वाणी की⁴⁸ । 18

यहाँ छिद्र सेनानी⁴⁹-उर में द्वार बना यम का भारी ।
गिरा धरा पर भीमकाय जब, कांप उठी वसुधा सारी ।
और साथ ही हुई प्रकम्पित विजय-श्री भी यवनों की,
भाग चली जब रण से सेना बची-खुची भी यवनों की । 19

नभ भी तो रुधिराभ⁵⁰ प्रतीची-ओर हुआ था उसी समय ।
छोड़ कमलिनी-मोह तरणि ने क्षितिज छुआ था उसी समय ।
संध्या भी अधीर-अरि-सेना की भगदड़ लखने आई ।
तभी धीर खीची-कुल-मणि-कृत शंख-ध्वनि नभ में छाई । 20

अरि-सिर-फल-युत रणस्थली सिर-त्राण-सुप्यालों वाली थी ।
रुधिर-धार-मधु-युत शाला सी यम के हेतु निराली⁵¹ थी ।

44. पत्थर के समान कठोर (वज्र गिरने से पहाड़ों की शिलाएं फट जाती हैं) । 45. बादलों से घनी अमावस्या जैसी (काली) देह । 46. बिजली के समान (जिस प्रकार अमावस्या की रात में बिजली चमकती है, उसी प्रकार काले शरीर में लगकर बाण का फल चमका) । 47. दिल्ली में बादशाह को बेचैनी हो रही थी । 48. भय से कुछ बोल नहीं पाते थे । 49. (यवन) सेनापति । 50. लाल (संध्या होने से) । 51. रणस्थली यमराज के लिए अद्भुत मधुशाला जैसी थी जहाँ शत्रुओं के सिर फलों जैसे, शिरस्त्राण प्यालों जैसे, और रुधिर धार मधु जैसी थी ।

हर्षित नभ ने नृप-धारू को उडु-मणि-भूषित छत्र दिया ।
प्राची ने विजयोपहार में चषक⁵² चन्द्र मिस भेंट किया । 21

आसव-सिंचित भञ्ज-आनना अपहृत अवलाएँ⁵³ रण में
मोक्ष पा गईं नृप उदार-धी धारू के द्वारा क्षण में ।
सजल-जलज-दृग-युत उनका मुख हुआ उसे दुःसह ऐसे ,
सहे न जलज-मुखद-अरुणातप असमय के जलवह⁵⁴ जैसे । 22

चाचाजी⁵⁵ के साथ सभी को सादर निज पुर भेज दिया ।
सब की उचित व्यवस्था करने का नृप ने आदेश दिया ।
हतोहतों की शीघ्र व्यवस्था और चिकित्सा करने को
रख सेवक-युत कुशल चिकित्सक बड़े शिविर को चलने को । 23

बड़े सोचते हुए अनमने से कुछ नरपति ,
हाय नाश-हित लड़ी परस्पर मानव-सन्तति ।
होती है निर्दोष व्यक्तियों की ही दुर्गति ।
खुद रहता है दूर महत्वाकांक्षी दुर्मति ।
वर-वीर-वंश का नाश ही तो रण का अभिशाप है ।
वचते हैं निर्बल ही, जिन्हें पुनः दवाता पाप है । 24

लेकिन स्वराष्ट्र-कल्याण का मार्ग एक ही भव्य है ।
सर्वस्व त्याग निज देश की रक्षा ही कर्तव्य है । 25

52. प्याला । 53. अपहरण की हुई कमल-गुब्बी स्त्रियों को बेहोश करने के लिए यवन लोग शराब पिला देते थे । ये सब धारू सिंह के साथ लगीं और स्वतंत्र कर दी गईं । 54. बादल । 55. जैत सिंह ।

वन्दे भारत मातरम्

शिव-शिर-शोभा-धाम, चन्द, वन्दन स्वीकारो ।
लाभ-हानि, यश-अयश, काल-कृत थिर-मति धारो ।
उगो, बढ़ो, यह श्याम निशा आलोकित कर दो ।
हम में जग के द्वन्द्व-सहन का साहस भर दो । ।

शिविर को चलते नृप देखते, उडुमयी निशि लें शशि सामने ,
विमन सौ सब ओर बिखेरती, चरम नीरवता रण-भूमि की । 2

यवन जो कुछ चेत चुके वहां, विरत वे इस जीवन से हुए ,
कह रहे, हमको अब ले चलो अनल-वंश-विरुद्ध न युद्ध में । 3

मुखर¹ घायल भी कुछ हो रहे, करुण याचक थे जल मात्र के ।
ध्वनित उत्तर में उनके हुई पिशित-तृप्त² शिवा-ध्वनि³ ही मनो । 4

करुण दृश्य नराधिप-दृष्टि में सकल घूम गया क्षण मात्र में ।
चरण थे बढ़ते सप्रयास ही, हृदय में न हुआ कुछ हर्ष था । 5

उधर सैनिक हर्ष मना रहे, नृपति का मन भी अवगाहते⁴ ।
गगन को नृप किन्तु निहारते । न मन किंचित हर्षित हो सका । 6

तनय एकल गंगुल⁵ नाम का, नगर गागर का युवराज था ।
न रण से अब भी वह आ सका जनक को करने मुदमान था । 7

1. बोलने वाले । 2. मांस से छके हुए । 3. स्यारिनों के शब्द । 4. थाह ले रहे थे । 5. धातु सिंह का एक मात्र पुत्र गंगुल सिंह जो गागरगढ़ (गागरौन) का युवराज बनाया जा चुका था ।

शिविर को भट प्राप्त शनैः-शनैः समर के उपरान्त बचे-खुचे
तनिक देर-सवेर सभी हुए; न पहुँचा पर गंगुल था अभी । 8
गगन से सहसा तब टूटता, अवनि पे इक तारक सा गिरा⁶ ।
चकित देख उसे कुछ हो गए, सिहर भूप उठे फिर त्रस्त से । 9

इधर मूर्छित गंगुल वोर को, अचिर सेवक लेकर आ गए ,
हृदय में जिसके क्षत⁷ था हुआ । नृप उठे सहसा कह 'कष्ट हा' । 10
भिषक-वर्ग लगे उपचार में, विफल किन्तु प्रयास हुए सभी ।
कर सका तनु प्राप्त न चेतना; न कुछ औषधि आयु-विना फली⁸ । 11
नृपति का अब धीरज खो गया, नयन-नीर चला वह वेग से ।
द्रवित आयस⁹ भी अभितप्त¹⁰ हो, फिर दशा नर की यह क्यों न हो ? 12
प्रकट की निशि ने समवेदना । रुदन में बिखरे कण ओस के ।
पवन भी कुछ देर रुका रहा हृदय-शोक-प्रकाशन के लिए । 13
विटप शान्त खड़े सब शोक में, शिविर नीरवता-वश हो गया
प्रकृति मान-प्रदर्शन-हेतु थी, सिसकती मन में चुपचाप ही । 14

नृपति फूट पड़े शिशु हो यथा—“सुवन गंगुल हा ! प्रिय पुत्र हा !
तुम कहां मुझको तज के चले ? नयन-तारक-हीन¹¹ करो न हा ! 15
“अशनि-पात¹² हरे! यह क्यों हुआ? अशुभ क्या मुझसे विधि का हुआ ?
कि यह कष्ट महा मुझको मिला? कि कल तात¹³ छिने सुत¹⁴ आज यों ?

6. तारा टूटते हुए देखने से लोग अशुभ की आशंका करने लगते हैं ।
7. घाव । 8. आयु शेष न रह जाने पर सभी औषधियाँ विफल हो जाती हैं ।
9. लोहा (जो अत्यन्त कठोर होता है) । 10. संतप्त (गरम), दुखी ।
11. आँखों की गुलली (पुत्र) से रहित । 12. वषट्-पात । 13. पिता (रत्न सिंह) ।
14. गंगुल सिंह ।

- “वदन¹⁵ है तब निद्रित सा हुआ; सहज शान्त स्वभाव दिखा रहा ।
पर न जाग्रत हो तुम पा रहे, जगत की धिक नग्न असारता ! 17
- “उचित है यह निष्ठुरता नहीं । ग्रसित है मम मानस-चन्द यों ।
हृदय है तब क्या दुखता नहीं, विलखते लखते मुझको यहाँ । 18
- “सुवन-शोक बना यह शकु¹⁶ है, हृदय है जिससे मम टीसता ।
छतज¹⁷-पीपल-अंकुर-सा उगा, कर रहा दृढ़ता पर घात है¹⁸ ; 19
- “अनल वात-विहीन कि जी सका; तरनि मेघ हरे कि शरत् बिना ।
अब करे मम कौन सहायता कि अरि दूर हटें इस भूमि से ? 20
- “अनल की यह वंश-परम्परा, सतत लीन रहे परमार्थ में ।
यदि अभी कुछ और अभीष्ट हो, नियति¹⁹ ! ले मम भी हर चेतना । 21
- “चल अदृष्ट ! मुझे सुत पास ले, कुछ प्रयोजन जीवन शून्य से
अब रहा न मुझे; निज कार्य में सफलता मिलनी अति दूर है । 22
- “सुमन था गढ़ गागर का नया, अधखिला रण में मुरझा गया ।
अब कहूँ किस से मन की व्यथा ? नियति से किसका वश है चला ? 23
- “अहह, मानव निर्बल है निरा, कर सका कुछ भी न स्वयंकभी ।
नियति के सब कार्य-कलाप हैं; बन सका नर मात्र निमित्त ही । 24
- “बलि-अजा-इव मूक बने सभी भुगतते करनी विधि-वाम की ।
गति यही जग की; क्षति-लाभ से सतत कौन रहा नर, हा ! बचा । 25
- “जनक-सम्मुख स्वर्गत पुत्र हो यदि कहीं, कहते तब शास्त्र हैं —
कि नर-पाल सकलमप²⁰ है स्वयं, अनय²¹ है अथवा कुछ राज्य में । 26
- ‘न यदि आगम विश्वसनीय हों, निधन का तब पुत्र वयस्क के
सकल दोष पिता पर ही रहा²², जगत में सबको यह मान्य है । 27

15. मुख । 16. कील । 17. छत में से उत्पन्न होने वाला । 18. पीपल का अंकुर इमारत को कमजोर कर देता है । 19. भाग्य । 20. पापशुक्त, पापी । 21. अनीति । 22. पुत्र-शोक रूपी दुःख पिता के किसी बुरे पर्म का ही फल माना जाता है ।

- “वदन¹⁵ है तब निद्रित सा हुआ; सहज शान्त स्वभाव दिखा रहा ।
पर न जाग्रत हो तुम पा रहे, जगत की धिक नग्न असारता ! 17
- “उचित है यह निष्ठुरता नहीं । ग्रसित है मम मानस-चन्द्र यों ।
हृदय है तब क्या दुखता नहीं, विलखते लखते मुझको यहाँ । 18
- “सुवन-शोक बना यह शकु¹⁶ है, हृदय है जिससे मम टीसता ।
छतज¹⁷-पीपल-अंकुर-सा उगा, कर रहा दृढ़ता पर घात है¹⁸ ; 19
- “अनल वात-विहीन कि जी सका; तरनि मेघ हरे कि शरत् बिना ।
अब करे मम कौन सहायता कि अरि दूर हटें इस भूमि से ? 20
- “अनल की यह वंश-परम्परा, सतत लीन रहे परमार्थ में ।
यदि अभी कुछ और अभीष्ट हो, नियति¹⁹ ! ले मम भी हर चेतना । 21
- “चल अदृष्ट ! मुझे सुत पास ले, कुछ प्रयोजन जीवन शून्य से
अब रहा न मुझे; निज कार्य में सफलता मिलनी अति दूर है । 22
- “सुमन था गढ़ गागर का नया, अधखिला रण में मुरझा गया ।
अब कहूँ किस से मन की व्यथा ? नियति से किसका वश है चला ? 23
- “अहह, मानव निर्बल है निरा, कर सका कुछ भी न स्वयंकभी ।
नियति के सब कार्य-कलाप हैं; बन सका नर मात्र निमित्त ही । 24
- “बलि-अजा-इव मूक बने सभी भुगतते करनी विधि-वाम की ।
गति यही जग की; क्षति-लाभ से सतत कौन रहा नर, हा! बचा । 25
- “जनक-सम्मुख स्वर्गत पुत्र हो यदि कहीं, कहते तब शास्त्र हैं —
कि नर-पाल सकलमप²⁰ है स्वयं, अनय²¹ है अथवा कुछ राज्य में । 26
- ‘न यदि आगम विश्वसनीय हों, निधन का तब पुत्र वयस्क के
सकल दोष पिता पर ही रहा²², जगत में सबको यह मान्य है । 27

15. मुख । 16. कील । 17. छत में से उत्पन्न होने वाला । 18. पीपल का अंकुर इमारत को कमजोर कर देता है । 19. भाग्य । 20. पापयुक्त, पापी । 21. अनीति । 22. पुत्र-शोक गयी मुख पिता के किसी बुरे कर्म का ही फल माना जाता है ।

“पर स्वयं नृप का प्रिय पुत्र ही अगर जीवन में उसके गया ,
तब न संशय का लवलेश है बच रहा नृप-कल्मष-वृत्ति में²³ । 28

“नृपति-जीवन में अनिवार्य है समर भी, जिसमें नर-श्रेष्ठ ही
विवश हो चलते मृति-मार्ग²⁴ में । न यह है नृप-कल्मष-वृत्ति क्या ? 29

“अवनिपाल-नृपाल कृपाल हो; फिर करे उपलब्ध समान ही
जगत में सबको प्रभु की कृपा; न कि हरे उनकी सुख-शान्ति ही । 30

“सुवन-वंचित हो अब लौं दुखी, अहह ! मात-पिता कितने हुए !
फिर न क्यों अवनीपति को मिले कुफल भी नृप-कल्मष-वृत्ति का ? 31

“इसलिए जिस भांति समाप्त हो यह सकल्मष जीवन शीघ्र ही ,
उचित है करना वह ही मुझे, कुछ घटे जिससे भुवि-भार²⁵ भी । 32

“सहज निगलने को शक्ति यों छीन सारी ,
जय मिस यह मानो है महाकाल आया ।
कुछ समय अभी भी शेष है नाश में क्या ,
इस मुझ हत-भाग्य के न जो प्राण जाते ? 33

“जन-हित²⁶ गति पाई वीर की पुत्र ने है ।
अब मन रखने को ये सभी देश वासी
जननि-जनक की भी तो प्रशंसा करेंगे ।
पर उन वचनों से शोक क्या क्षीण होगा ?” 34

नृपति गंगुल का सिर गोद ले, कर रहे इस भांति विलाप थे ।
उदधि²⁷ सा बढ़ता अति शोक था, निरखते सुत-आनन-चन्द्र को । 35

23. राजा का काम पाप पूर्ण है, इसमें संशय नहीं प्रतीत होता । 24. मृत्यु ।
25. पृथ्वी पर का भार । 26. सार्वजनिक कल्याण के लिए । 27. समुद्र (जो
पूर्ण चन्द्रमा को देखकर बढ़ता है, जिसे ज्वार कहते हैं) ।

शिविर के सब सैनिक भी हुए शिथिल थे गति देख नृपाल की ।
 अवश कौन सँभाल सके किसे, जब स्वयं सब कर्दम²⁸ में फँसे ? 36
 कर सका विधु यद्यपि पार था गगन-सागर तारक-श्री गँवा²⁹,
 नृपति किन्तु न शोक-समुद्र को तर सके पर श्री-हत भी न थे³⁰ । 37

अनुकरण पितामह का किया, गागरौन-युवराज ने ।
 पथ पा प्रशस्त जिस पर चले, राजपूत सैनिक घने । 38
 भारत माता की मुक्ति हित, तन-मन-धन बलिदान हों ।
 सन्देश लिया, ये तृण-सदृश त्याज्य देश हित-प्राण हों । 39
 कुछ लाभ नहीं यदि ले चले, कहीं निराशा साथ में ।
 कर्तव्य करो, फल छोड़ दो जग-नायक के हाथ में । 40
 हों लाभ-हानि, जीवन-मरण, यश-अपयश, कुछ या सभी ;
 रह थिर-मति धीरज धारिए, हुए बिना विचलित कभी । 41

28. कीचड़ । 29. प्रातःकाल चन्द्रमा आकाश रूपी सागर तो पार कर गया, किन्तु तारों से होने वाली अपनी शोभा खो बैठा । 30. राजा शोक रूपी समुद्र तो पार न कर सके (शोक से मुक्त न हो सके), किन्तु (चन्द्रमा की भांति) श्री-हीन भी नहीं हुए ।

तीसरी किरण

दिल्लीश-प्रतिक्रिया

पूर्यं खण्ड	प्रतिशोध
मध्य खण्ड	धारु-स्वर्गारोहण
उत्तर खण्ड	धर्म-संकट

राष्ट्र-वन्दना

वैविध्य-शतदल^१ विश्व-मानस^२ एक मात्र खिला सका ;
 रचि-पचि उसे ही विश्वकर्मा^३ अद्वितीय बना सका ;
 जिसपर उतर प्रभु लोक-रंजन^४, धर्म-संस्थापन^५ करें ;
 हम मातु-पितु-गुरु-तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें ।

-
१. विविधता रूपी कमल, जिसमें सैकड़ों पंखुड़ियां हों। विशेष व्याख्या के लिए अन्तर्दृष्टि का अनुच्छेद ४.५.५ (पृष्ठ ६१, ६२) देखिए। २. संसार रूपी मानसरोवर। ३. संसार की रचना करने वाला। ४. संकेत रामचन्द्र जी की ओर है जिनका आदर्श था 'राजा प्रकृति रंजनात्'। ५. संकेत कृष्ण जी की ओर है, जिन्होंने गीता में कहा है, 'धर्म-संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे'।

वन्दे भारत मातरम्

है भूल-चूक इस जग में सबसे होती ही रहती सदा ।
यह है मानव की प्रकृति भले ही इससे आती आपदा ।
उस परमेश्वर का शिक्षा देने का यह ढंग विचित्र है—
कष्टों की ज्वाला में झुलसाता, फिर भी बनता मित्र¹ है । 1

जब नियति कर्म-फल-भोग सुनिश्चित है तब क्षमा माँगना क्या ?
हो पुरस्कार या दण्ड, भोगने में फिर धैर्य त्यागना क्या ?
हे प्रभो, धैर्य दो, साहस दो, सब सहने का सब करने का ।
दो हमें सुमति भी, समुचित निर्णय करें कृत्य ही करने का । 2

ऐसे ही कुछ अस्पष्ट गुनगुना, कुछ अदृश्य से बात कर ,
नृप रहे डूबते-उतराते से शोक-सिन्धु में रात भर ।
दुख हुआ न कम; हाँ, रात सिरानी, किन्तु उदास प्रभात था ,
आखें भी सबकी भरी-थकी थीं, थका-थका ही गात था । 3

1. ईश्वर को मित्र भी कहते हैं । तुलना कीजिए :

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

और भी : न रिष्येत् त्वावतः सखा । ऋग्वेद मं. 1 सूक्त 91 मंत्र 8 ।

अर्थात् जिसके आप मित्र हो, वह कभी नष्ट नहीं होता । और,

कया नः चित्रः आ भुवत् ऊती सवावृधः सखा ।

कया शस्त्रिण्यया वृता ।

यजुर्वेद 36/4; तथा 27/39 ।

अर्थात् वह भगवान जिसका सखाभाव हमारे साथ सदा बढ़ता जाता है, अपनी आश्चर्यजनक रक्षा किस प्रकार हमें प्रदान करेगा, और किन आश्चर्यजनक उपायों से हमारी सहायता करेगा, यह वही जानता है ।

समर से कुछ सैनिक थे भगे, पहुँच वृत्त कहा जब शाह² से,
भर उठा वह तीव्र अमर्ष³ से, द्रुत चबा कर होंठ खड़ा हुआ । 4

फिर बुलाकर सेनप⁴ को दिया, खुद निदेश तुरन्त प्रयाण का ।
यवनराज बना जवना चमू⁵ तिमिर चीर चला निशि में स्वयं । 5

सब कहीं तमहीन मही न थी, तरु-तले तम तन्द्रित⁶ था अभी ।
द्विज⁷ चले तज नीड⁸ प्रभात में, विहरने, हरने मन की व्यथा । 6

सुन पड़ा सहसा रव⁹ दूर था, लख पड़ा उठता घन धूल का,
कर दिया जिसने क्षण मात्र में, अधिक धूमिल निष्प्रभ¹⁰ चन्द को । 7

इधर भास्कर ले कर लक्ष¹¹ थे, क्षितिज से जब पूरब में कढ़े,
उधर आयुध ले कर लक्ष थे, यवन सैनिक उत्तर से बढ़े । 8

इधर भूप-चमू अति शोकिता, गजवती¹² जव-तीव्र-हया¹³ उठी ।
नृप सरोष घरे अरुणाभ थे, रिपु डरा लख के अपरार्क सा¹⁴ । 9

न कर किंचित सोच-विचार भी, अचिर वीर रणोद्यत हो गए ।
न बदले रण के परिधान थे रजनि में लगती तब देर क्यों ? 10

तुरत घावन भी हर गांव में, नृपति-आयसु ले पहुँचे, जहाँ
निकट संकट की तुरही बजी, कि सब नागर सैनिक भी चले । 11

2. बादशाह अलाउद्दीन खिलजी । 3. क्रोध । 4. सेनापति । 5. तेज चलने वाली सेना । 6. अलसाया हुआ (अँधेरा अभी कुछ देर और पड़ा रहना चाहता था) । 7. पक्षी । 8. घोंसले । 9. कोलाहल । 10. चमकरहित (प्रातःकाल होने के कारण) । 11. छावनों फिरणों । 12. हाथियोंवाली । 13. तेज चाल के घोड़ों वाली । 14. एक अन्य सूर्य सा (क्रोध से जाल होने के कारण) ।

नृप उठे जब भीम शरीर ले, नग¹⁵ मनो गमनोद्यत हो उठा ।
धृत-गजाजिन¹⁶ से लगते न थे, कम मनोहर वे हर वेश¹⁷ में । 12

समर-तूर्य बजा युग पक्ष से, तुमुल नाद भरा नभ-भूमि में ।
यवन टूट पड़े गत-धैर्य से, शलभ से¹⁸ ढक संगर¹⁹-भूमि को । 13

इधर व्यूह किए कर खड्ग ले, लपलपाकर दीप-शिखा यथा ,
विरल थी उनको सब ओर ही, कर रही नृपवर्य-अनीकिनी²⁰ । 14

रवि छिपा रज-नीरद से पुनः, चमकते चपला-इव खड्ग थे ।
जलद-घोष हुई भट-हुंकृति, धनुष भाद्र²¹ सहस्र धरे यथा । 15

विशिख-वृष्टि हुई जब तीव्र थी, बढ़ गया तब मारुत वेग²² भी ।
अरि-दलाम्बुधि²³ की लहरें बढ़ीं, रव-वती²⁴ करती गिरि कन्दरा । 16

प्रलय-काल उपस्थित सा हुआ, अचल²⁵ क्षत्रिय सैन्य डेटा रहा ।
उखड़ते तरु मारुत से सदा, पर महीभृत²⁶ तो हिलते नहीं । 17

विशिख छोड़ शरासन जो चले, अमित छिन्न हुए अरि-वाण से
फल²⁷ बढ़े फिर भी निज वेग से, पहुँच लक्ष्य समीप गए सभी । 18

गगन-मण्डल में उड़ने लगे पिण्डित-खण्ड लिए अब गीध भी ,
स्वपथ-भ्रष्ट-शराहत²⁸ हो वहीं, चिर रुके शर-व्याप्त घनाध्व²⁹ में । 19

15. पर्वत । 16. गजासुर का चर्म पहिने हुए (राजा के भी कपड़े रक्त से सने हुए थे जो शोक के कारण बदले भी नहीं गए थे) । 17. महादेव के वेश में (महादेव जी ने महिषासुर के पुत्र गजासुर को मारकर उसकी खाल ओढ़ी थी) । 18. पतिगों, टिड्डियों के समान । 19. युद्ध । 20. सेना । 21. भादों मास । 22. वाणों के वेग के कारण हवा का वेग भी बढ़ गया । 23. शत्रु-सेना रूपी समुद्र । 24. ध्वनि (की गूंज) युक्त । 25. पर्वत, अडिग । 26. पर्वत, राजा । 27. वाणों के अग्र भाग । 28. मांस के टुकड़े लिए हुए गूढ़ कभी-कभी मार्ग-भ्रष्ट वाणों की चोट खा जाते थे । 29. वाण लगने पर भी गूढ़ आकाश में बड़ी देर तक रुके रहते थे क्योंकि आकाश वाणों से इस प्रकार भरा था कि वे नीचे नहीं गिर पाते थे ।

कछुक श्येन, नखाग्र-गृहीत³⁰ जो, अँतड़ियाँ बन हार³¹ गिरीं कहीं ,
अचिर छिन्न हुए सिर साथ ले, फिर उड़े³² गिरने न दिया उन्हें । 20

रव हुआ—खल भाग रहा कहाँ? भग गया? पर लक्ष्य बना न क्या ।
शर चले वह जो निज लक्ष्य को अनुग होकर³³ निश्चय प्राप्त हों । 21

छप-छपा-छप³⁴ खड्ग चलें कभी; खट-खटा-खट हो ध्वनि ढाल से ।
खन-खना-खन आपस में लड़ीं; कट गिरीं करवाल अनेक थीं । 22

अनल-वर्षण से वृष-भानु³⁵ थे जब असह्य चराचर को हुए ,
अनल-अस्त्र लिए पहुँचे वहां, यवन सैनिक भी कुछ और थे । 23

तरणि थे जब यौवन लांघते³⁶, समर भी तब यौवन-पार था ।
दिख पड़े कुछ वीर थके-थके, अनल-केतु परन्तु सतेज थे । 24

सकल नागर सैनिक भूप के, समर प्रांगण में पहुँचे तभी ।
तड़ित-वज्र धरे घन की घटा, शिखर-भंजन-हेतु घिरे यथा । 25

अनल-वर्षण भी वह हो चला अब, परस्पर निर्दयता-पगे ,
उभय पक्ष लगे जब भूतने, बन गई रण-भूमि परेत-भू³⁷ । 26

पटल³⁸ सा बन गन्धक-धूम का, कफन ही सब के हित हो गया ।
मरण के अतिरिक्त न अन्य थी गति रही उस भोषण युद्ध में । 27

30. पंजों में पकड़ी हुई । 31. कटी हुई आँतें किसी योद्धा के सिर पर माला के समान गिरीं (यह अशुभसूचक समझा जाता है) । 32. जिस सिर पर अँतड़ियों की माला गिरी, वह भी तुरंत कट गया, और बाज आँत के साथ उसे भी ले उड़ा, सिर भूमि पर गिरने न पाया । 33. पीछा करके । 34. किसी योद्धा के शरीर पर लगने से । 35. वृष राशि (वैशाख) का सूर्य । 36. दोपहर बीत रही थी । 37. स्मशान भूमि । 38. आवरण ।

धारू - खिलजी - युद्ध था, धारू - खिलजी - युद्ध ।
 उपमा अन्य न, भिड़ रहे सुभट उरग^{३९} से क्रुद्ध । 28
 नभ-सर में थक हंस^{४०} भी होगा क्या अब अस्त ?
 या पंकज-इव शाह का^{४१} पकिल सपना छवस्त ? 29
 पर जब तक बारूद है, रुकने का क्या काम ?
 आखिर आई रात ही, देने को विश्राम । 30

मध्य खण्ड

धारू-स्वर्गारोहण

वन्दे भारत मातरम्

जब चन्द मन्द हो रहा, सितारे डूब रहे हों ,
द्विज नजरबन्द से बोल सुनाते ऊँघ रहे हों ,
तब कौन बताए राह, अहो, आगे बढ़ने की ?
रवि, उगो; प्रतीक्षा हमें तुम्हारे ही चढ़ने की । 1

रजनि में जब सैनिक शान्त थे, यवनराज रहा यह सोचता—
कि रव¹ लाज रखे अभियान की, गजब का यह सख्त मुकाबिला । 2
कि छल से, बल से, अथवा कहीं नियति ही अपना कुछ साथ दे ।
फिर जमें हम तो उखड़ें नहीं, अजय² का परिमार्जन हो सके । 3
वन सिकन्दर दायम³, ले चुका सहज ही वश में गुजरात तू ।
टिक सका न सिवान न मालवा, मगर गागर⁴ आँख दिखा रहा । 4
कह उठा खुद को फटकारते— कि अब तो बस लानत है खुली ;
अलम⁵ है पकड़ा जब दीन⁶ का, कसद⁷ याद रहे अपना ज़रा— 5
यह बुलन्द⁸, रहे न झुके कभी, कसम है कुरआन शरीफ की ;
तनिक भी सहनी अब है नहीं सरकशी⁹ इस काफिर कौम¹⁰ की । 6

1. ईश्वर । 2. हार । 3. द्वितीय (एक और) । 4. गागरगढ़ (गागरीन) ।
5. झण्डा । 6. धर्म । 7. संकल्प । 8. ऊँचा । 9. उद्दण्डता । 10. मुसलमान लोग
हिन्दुओं को काफिर (इस्लाम का दुश्मन) कहते थे ।

गगन में पसरौ¹¹ अब लालिमा कह रही, हत यद्यपि थी तमी¹²,
 तिमिर किन्तु न पूर्ण विनष्ट था, छिप रहा वह कोटर-ओट¹³ में । 7
 रवि उगा; तम को फिर खोजने लग गया कर फेंक सहस्रधा ।
 सिहर किन्तु उठा रण-भूमि में निरख जीवन की वह दुर्दशा । 8
 जब कि जीवन-धारण हेतु है श्रम अपेक्षित वर्ष अनेक का,
 धिक नराधम, नष्ट करे उसे, प्रिय पिता प्रभु की इस सृष्टि में । 9

बज उठे सहसा रण-तूर्य¹⁴ भी, चल पड़े दल के दल जोश में ।
 चमकते सबके हथियार थे, रजत-सिन्धु मनो लहरा उठा । 10

निज दलाधिप के फ़िर हुकम पा भिड़ गए भट धीरज छोड़ के ।
 समर भी पिछले दिन से हुआ अधिक भीषण ही कुछ देर में । 11

फिर बने शव-मेरु जहां-तहां; उफनते नद शोणित के बहे ;
 कट गिरे गज-वाजि; तथा फिरे सुभट रक्त-सने बन योगिनी । 12

तरणि की गरमी जितनी बढ़ी, समर की गरमी बढ़ती गई ।
 न फिर क्षीण हुई अपराह्न में, तरणि यद्यपि था झुकने लगा । 13

जल बढ़े, बढ़ता सँग पद्म है; जल घटे, घटता वह है नहीं ;
 वरु समूल मिटे सर सूखते । समर-अन्त कि हो रवि डूबते ? 14

तुमुल युद्ध¹⁵ कहीं धनु-वाण से कहुर¹⁶ ढाकर वीर रचा रहे ।
 कछुक मल्ल¹⁷ परस्पर द्वन्द्व ही कर रहे हथियार-विहीन हो । 15

असि कहीं पर वीर चला रहे; पिल पड़े कुछ लेकर ही गदा ।
 विरथ¹⁸ भी रण-धीर न युद्ध से विरत होकर बलीब बने कहीं । 16

लड़ रहे नृप निश्चय सा किए— वसुमती खिलजी-कुल-हीन हो ;
 अनल-वंशज ही अथवा नहीं, समर से अब जीवित लौटता । 17

11. फैली हुई । 12. रात । 13. कोने-कोतरे (nook and corner) की आड़ में । 14. युद्ध के बाजे (तुरही आदि) । 15. जोर की लड़ाई । 16. आफत । 17. पहलवान । 18. रथ-हीन ।

स्वबल¹⁹ भग्न²⁰ हुआ रिपु-सैन्य से, अनल-केतु तथापि बढ़े चले ।
 पवन से फटता यदि धूम है, अनल है बढ़ता तृण हो जहाँ । 18
 यदपि क्षत्रिय क्षुल्लक²¹ मात्र थे, सतत प्रेरित देश-हितार्थ ही ।
 सब दिखा कर जोहर²² थे लड़े; यवन-सैन्य न किंतु समाप्य था ? 19
 जब कि क्षत्रिय शेष इने-गिने लड़ रहे निज प्राण हथेलि ले ।
 यवन सैनिक प्राण बचा रहे रजत के टुकड़ों पर²³ ध्यान दे । 20
 उधर केवल भोग-विलास के हित लगे जय-प्राप्ति प्रयास में ;
 इधर ध्यान सदा निज देश का । बहुत अन्तर था युग पक्ष में । 21

अनुमति तब पाके शाह की भी सभी ने
 मिलकर, नृप को पा सैन्य से दूर, घेरा ।
 अलि-कुल मधु-लोभी, छोड़ के पंकजों को,
 जिस विधि मद-माते नाग की ओर²⁴ जाते । 22

नृपतिवर लगे थे काटने शत्रु-सेना ;
 'हर-हर' वह बोले, 'ज महादेव जी' की ।
 पर 'अकबर है अल्लाह²⁵' भी घोष गूँजा,
 प्रतिध्वनित हुआ जो कण्ठ से कण्ठ में था । 23

रण तुमुल किया था एक ने बीसियों से,
 मृगपति²⁶ करता है सामना ज्यों द्विपों²⁷ का ।
 पर फिर किंतना भी हो सिता²⁸-खण्ड भारी,
 कब तक टहरेगा, चींटियाँ जो चढ़ीं हों । 24

19. अपनी सेना । 20. क्षतिग्रस्त । 21. थोड़े (क्षुल्लकी भर) । 22. खूबी दिखाकर । 23. चाँदी के टुकड़ों (वैतन के रुपयों) पर । 24. मद गिराते हुए हाथी की ओर (उग्रतर गंध के कारण) कमलों को छोड़कर जाते हैं । 25. अल्लाहो अकबर (ईश्वर महान है) । 26. सिंह । 27. हाथियों । 28. मिथी ।

चकित हंस²⁹ नभस्सर में गया, अहह ! क्या अब डूब सदैव को ?
न कुछ भी उसका अब शेष है, कछुक तारक-बुद्बुद³⁰ से उठे । 25

नृप हुए छविमान विमान में; तिमिर फैल गया नभ-भूमि में ।
अखिल-राष्ट्र-भविष्य तमिस्र³¹ था, न कुछ सूझ पड़ा, अब क्या करें । 26

जब तमी उतरी रण रोकने, यवन-सैनिक हर्ष-निमग्न थे ;
मुदित जम्बुक और उलूक त्यों; मगर क्षत्रिय पंकज खिन्न थे । 27

तरणि गगन से तो अस्त ही हो चुका था ;
यह अवनि कहेगी वीरता की कहानी—
किस विधि सब सेना क्षत्रियों की लड़ी थी ,
किस विधि नृप धारु थे बने स्वर्ग-यात्री । 28

चकित शाह रहा लख वीरता, अजय सी जय भी उसकी हुई ।
स्ववल हानि रहा अनुमानता, रुचि किए कुछ सन्धि-विचार की । 29

कुछ यवन सादि³² आगे बढ़े, श्वेत पताका हाथ ले ।
तब क्षत्रिय भी सित ध्वज लिए, लौट शिविर अपने चले । 30

था शाही भोज लजीज³³ उस रात यवन दल को मिला ।
सन्तुष्ट शाह ने कर दिया, विविध मांस दे मधु पिला । 31

29. सूर्य, हंस पक्षी । 30. तारे रूपी बुलबुले । 31. अँधेरा ।
32. घुड़-सवार । 33. स्वादिष्ट ।

दो यवन-दूत भी रात ही, पहुँचे क्षत्रिय शिविर में ।
बोले—“भेजा यह भेंट ले शहंशाह ने है हमें । 32

“हैं शौर्य, धैर्य, श्रीमान के, सब पूजा के योग्य ही ।
यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर मित्र बनें, विनती यही ।” 33

लौटे मैत्री सन्देश ले । खीची-दल ने तुष्ट हो
उनसे उत्तर में कह दिया, “अचिर सन्धि यह पुष्ट हो ।” 34

बलिदानों से परिपूर्ण यह अनल-वंश-इतिहास है ।
ध्रुव देश-भक्ति-प्रेरक प्रवल यह स्वातंत्र्य-प्रयास है । 35

उत्तर खण्ड
धर्म-संकट

वन्दे भारत मातरम्

जो कुछ सम्मुख हो बस उसको ही दीप प्रकाशित करता है ;
पर ज्ञाताज्ञात पूर्वजों को कुल-दीप^१ प्रकाशित करता है ।
उस बलिदानी कुल-दीपक को है नमस्कार सौ बार प्रभो ,
जो बन माई का लाल, कष्ट निज मातृ-भूमि के हरता है । 1

हुए सभी गागर में दुःखी थे गँवा अनोखे रण-बाँकुरे यों ।
नृपाल दो-दो, युवराज ऐसे, कहां मिलेंगे उनको हितैषी । 2
थी शोक तो तेरह वासरों का, प्रजा मनाती कुल राज्य-व्यापी ।
सँभालते शासन-कार्य सारा, सुमन्त्रियों से युत जैत सिंह । 3
इन्हीं दिनों संसद ने विचारा, तथा चुना भी सबने उन्हीं को ;
पितृव्य^२ धारू नृप के मनीषी, हुए नये पार्थिव-लक्ष्य-धारी^३ । 4
पुरी^४ सजा के दरवार भव्य किया गया था, जिसमें पधारे
समस्त सामन्त तथा हितैषी नृपाल संबंधक, मित्र आदि । 5
वन्दी-जनों ने गण-गान गाया, तथा पुरोधे महिषाभिषेक
के बाद आशीर्वचनादि बोले । भारी सभी ने जयकार भी की । 6
भाटों तथा चारण आदि ने भी गा-गा सुनाई विरधावली थी ।
जागीर, वखशीश^५ तथा सिरौपा^६ जैसे पुरस्कार उन्हें मिले थे । 7

1. कुल का दीपक, सुपुत्र । 2. व्याधा । 3. राज-चिह्न धारण करने वाला, राजा । 4. नगरी । 5. इनाम, दान । 6. इनाम में दी जानेवाली (सिर से पैर तक की) पूरी पोशाक ।

समस्त सामन्त तथा हितैषी, नृपाल, भैवाद⁷, दलाधिपों को ,
 सम्बन्धियों को बलिदानियों के, तथैव युद्धोत्तरजीवियों को— 8
 साभार वीरोचित मान-शंसा, आजीविका और उपाधि⁸ दे के ,
 विप्रादि को भी धन-दान द्वारा, प्रसन्न-सन्तुष्ट किया कृती ने । 9
 खीची-गणाधीश्वर ने सभी का आभार माना अरु धन्यवाद
 देके प्रजा की सुख-शान्ति एवं समृद्धि की हार्दिक कामना की । 10
 “हे मातृ-भू, कानन-ग्राम जो हैं, होगी सभा, या रण ही कहीं हो ।
 सर्वत्र वार्त्ता हित की करेंगे, सदा तुम्हारे हित की कहेंगे⁹ । 11
 “कोई रथी या रथहीन भी हो, सादी, असादी अथवा पदाती ,
 जो हों अराती सबको मिटा दें, न नाम को भी रह जाय कोई¹⁰ । 12
 “जहां बसाए पुर पूर्वजों ने, खेती तथा उद्यम से समृद्ध ,
 सर्वत्र हे मां, उनको सुरम्य, प्रजाधिकारी करते रहेंगे¹¹ । 13

7. विरादरी (बधु-बांधव) । 8. पदवी । 9. तुलना कीजिए :

ये ग्रामा यदरण्यं या समा अधि भूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेसु चारु वदेम ते ॥ अथर्ववेद 12/1/56 ।

अर्थात् तुल्य भूमि पर जो गांव हैं, जो जंगल हैं, जो सभाएं होती हैं, जो संग्राम होते हैं और जो समितियां होती हैं, उन सब में, हे मातृ-भूमि, हम तुम्हारे लिए सुन्दर बात, हित की बात बोलें ।

10. तुलना कीजिए :

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।

सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ अथर्ववेद 11/10/24 ।
 अर्थात् रथ में बैठे हुए, रथ से रहित, घोड़े पर बैठे और बिना घोड़े के पैदल चलने वाले सभी शत्रु हमारे द्वारा मारे जाकर गिद्ध, बाज आदि पक्षियों का भोजन बनें ।

11. तुलना कीजिए :

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वन्ते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भमाशामाशां रण्यां नः कुणोतु ॥

अथर्ववेद 12/1/43 ।

अर्थात् जिसके नगर व्यवहार-कुशल शिल्पियों के द्वारा बनाए गए हैं, जिसके खेतों में मनुष्य विविध प्रकार के कार्य करते हैं, सब कुछ जिसके गर्भ में है, ऐसी पृथ्वी को हमारे प्रजाधिकारी प्रत्येक दिशा में हमारे लिए रमणीक बनाएँ ।

"जहाँ हमारे पुरखे सुकर्मा हुए महात्मा अध-नाश-कर्ता ,
गो-अश्व जैसे पशु और पक्षी सदा हितैषी बढ़ते जहाँ हैं , 4

"ऐसी हमारी प्रिय मातृ-भूमि सभी सपूतों पर हो दयालु ।
ऐश्वर्य, सौभाग्य उन्हें सदा दे, अनिष्टकर्ता सब नष्ट ही हो¹² । 15

"हे मातृ-भूमे, तुम अन्नदा हो अनश्वरा, विस्तृत कामदा हो ।
जो भी तुम्हारी कुछ न्यूनताएँ हों, वे करें पूर्ण सभी प्रजेश¹³ । 16

"हे मातृ-भूमे बल-बुद्धि दीजै, सदा प्रजा के हित में लगेँ जो ।
यों धन्य हो जीवन भी हमारा तत्काल भारी जयकार गूँजी । 17

पितृव्य को देकर मान ऐसा, डरी न दिल्लीपति को प्रजा भी ।
लगी जताने इस भांति मानो, उसे हुआ शासन प्राप्त जैसे¹⁴ । 18

12. तुलना कीजिए :

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्या देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥

अथर्ववेद 12/1/5 ।

अर्थात् जिसमें पहिले पूर्वज लोग भांति-भांति के कर्म करते रहे हैं, जिसमें देवप्रकृति के पुरुष पापात्माओं को पराजित करते रहे हैं, जो गौवों, घोड़ों और भांति-भांति के पक्षियों का अथवा अन्नों का विशेष निवास स्थान है, वह पृथिवी, हमारे लिए ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे ।

13. तुलना कीजिए :

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना ।

यत्त ऊनं तत्त आ पूरयावि प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥

अथर्ववेद 12/1/61 ।

अर्थात् हे मातृ-भूमि तुम मनुष्यों की अन्न देने की जगह हो, अविनश्वर और काम-नाएँ पूर्ण करनेवाली तथा विस्तृत (या विस्तृत ख्याति देने वाली) हो । तुम्हारी जो न्यूनता हो, उसे सत्य का प्रथम उत्पन्न करनेवाला प्रजापति पूरा करता रहे ।

14. दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने अपने चाचा जलालुद्दीन फिरोजशाह की नृशंस हत्या करके सं० 1347 वि० (1290 ई०) में राज्य हथियाया था, जबकि

नरेश तीनों¹⁶ निज शक्तियों को सदैव आकृष्ट किए हुए थे ।
 यथा अयस्कान्त¹⁶ अयस्कणों को¹⁷ स्वतेज से है करता सदा ही । 19
 नृपाल है आश्रयणीय होता कभी नहीं, हो यदि कोष रिक्त ।
 यथा कभी अम्बुद वारि-हीन निहारता चातक भी नहीं है । 20
 इसी लिए संचय भूप का भी प्रजा-हितों में व्यय के लिए था ।
 प्रदान ही के हित वृष्टि द्वारा, सभी रसों को रवि खींचता है । 21
 न लाभ हो निर्बल मित्र से ही, समृद्ध से हो अपकार शंका ।
 इसीलिए मध्यम शक्ति वाले महीप साथी नृप ने बनाए । 22
 स्वशक्ति के ही अनुरूप कार्य सदैव होते फिर भी सभी थे ।
 समीर भी दे यदि साथ तो क्या हुआ कभी पावक वारि-कामी¹⁸ । 23
 समृद्ध भी भूप हुए कभी भी नहीं अनौचित्य पथानुगामी ।
 प्रवृद्ध¹⁹ भी ज्यों करता प्रवेण, नदीश²⁰ है मात्र नदी-मुखों में । 24
 महीप के यद्यपि नेत्र दोनों विशाल पर्याप्त मृगाक्ष से थे ;
 परन्तु थे आगम²¹ सूक्ष्म-दर्शी सुनेत्र ही वास्तव में कृती के । 25
 स्वतन्त्रता-रक्षण-हेतु सभ्य हुए सभी चिन्तित भूप-संग ।
 दिखा न श्रेयस्कर शस्त्र-युद्ध, अराल²² दिल्लीपति शाह से था । 26
 विनाश से क्या कुछ लाभ भी है ? न सृष्टि का है यह अन्त अच्छा ।
 द्विजिह्व²³ को भी इस भांति मारें, न यष्टि²⁴ टूटे जिससे हमारी । 27

आजा साहेब जैतसिंह ने जन-प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाकर सम्मान सहित राज्य प्राप्त किया था (दूसरी किरण के पूर्व खण्ड, 'प्रबल प्रतिरोध' का छन्द 25-26 भी देखिए) । 15. राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं—सैन्य-शक्ति, मन-शक्ति (संयत्त) और जन-शक्ति (जन-सहयोग) । 16. चुम्बक । 17. लोह-कणों को । 18. पानी का इष्टक । 19. बड़ा हुआ (यथा ज्वार में) । 20. समुद्र । 21. शास्त्र । 22. कुटिल । 23. दो जीभों वाला (साँप अथवा दो मुँही बातें करने वाला) । 24. लाठी, सहारा ।

तभी वहाँ आ पहुँचे बसोठ²⁵ लिए सुसन्देश उदारता का ।
अनेक शर्तें उस सन्धि में थीं, कुछेक स्वीकार्य परन्तु अन्य— 28

थीं स्वाभिमानो नृप को अमान्य, विरोध भारी जिनका हुआ था ।
उन्हें हटाके अपनी मिला दीं, थीं मान्य भी संसद को हुई जो । 29

ऐसा बना अन्तिम सन्धिनामा, लेके जिसे लौट गए बसोठ ।
हुआ वही स्वीकृत शाह को भी, थी काम्य²⁶ मंत्री नृप को उसे तो । 30

तथापि निःशंक हुए न खीची, रहे बढ़ाते निज सैन्य-शक्ति ।
न धूर्त लोभी वृक²⁷ सान्त्ववादी²⁸ बने कभी विश्वसनीय होता । 31

अभी पड़ी थी न कथा पुरानी प्रख्यात रानीवर पद्मिनी की ।
गोरा तथा बादल वीर ने था इसी छली से नृप²⁹ को छुड़ाया । 32

हलाल³⁰ होता शरणागतों का, खिला-पिलाके अज-मेष जैसे ।
कृतघ्न अत्याचरणेच्छु तो हैं पाले हुए कुक्कुट³¹ भून खाते । 33

विश्वास तुर्कोपर हो न किंचित् चाहे पिए श्वा³² जल घूँट के भी ।
लोकोक्ति ऐसी चल भी पड़ी है । सीखे न कोई अनुभूति से क्यों ? 34

अनेक नाले परिपूर्ण पानी - वाली नदी में मिल शुद्ध हों ज्यों ,
समंत सिन्धूमि विलोक किवा विलीन होती नदियाँ यथा हैं ; 35
आते रहे हैं इस देश में त्यों अनेक विश्वास-मतावलम्बी ,
परन्तु वे गौरव मानते थे, हो हिन्द की संस्कृति के पुजारी । 36

आ-आ विदेशी-शक-हूण-जैसे यहाँ बसे थे बन भारतीय ;
परन्तु कोई बनना न चाहे, मनुष्य ही, तो फिर क्या करोगे ? 37

25. दूत । 26. कामना करने योग्य । 27. भेड़िया (जो धूर्तता के लिए प्रसिद्ध है) । 28. मिष्ठ-भाषी । 29. चित्तौड़ का राजा रत्नसिंह जिसको अला-उद्दीन ने रानी पद्मिनी को प्राप्त करने के इरादे से धोखा देकर कैद कर लिया था और बाद में गोरा तथा बादल आदि वीरों ने मुक्त कराया था । 30. शरई रीति से पशु वध; वह मांस जिसका खाना मुसलमान लोग उचित समझते हैं । 31. मुर्गे । 32. कुत्ता (कहावत हो गई है—'बरु बँबुर माँ लागें बेल, बरु बारु से निकरै तेल; स्वान वारि बरु पियै सुरुक्का; तबहूँ ना परतीति तुरुक्का') ।

चौथी किरण

सद्धर्म-दुन्दुभि

पूर्व खण्ड	—	मार्गान्वेषण
मध्य खण्ड	—	महाभिनिष्क्रमण
उत्तर खण्ड	—	शक्ति-संचयन

शुरू पढ़ाई जब फारसी की हुई, यहां शिक्षित वर्ग ने भी ।
 भुला दिया गौरव जाति का ही तुरन्त ही, संस्कृति देश की भी । 48
 भाषा परायी जब आ गई यों विजित्वरों³⁸ की तब श्रेष्ठता भी
 परास्त³⁹ लोगों पर क्यों न छाती चरित्रहा दास्य⁴⁰ उन्हें सिखाती ? 49
 गिराव आया गति तीव्र लेके स्वदेश का; शासक-वर्ग की ही
 सभी कहीं जै-ध्वनि हो रही थी, सतर्क खीची-कुल को बनाती । 50
 कहीं दिया लालच नोकरी का, प्रदान माफी कर दी किसी को ,
 कभी किसी को धन दे मिलाया, स्वधर्म हिन्दू तज यों रहे थे । 51
 कभी चुरा लीं वधुएँ नवोढ़ा⁴¹, बलात लीं छीन कुलांगनाएँ ,
 अधर्मियों ने कुछ अंग छूके अनेक धर्म-च्युत की स्त्रियां थीं । 52
 यों हो चले तुर्क असंख्य एवं असंख्य हिन्दू कम हो चले थे ।
 दुश्चिन्त्य था संस्कृति का विनाश तथैव धर्मान्तर हिन्दुओं का । 53
 दिल्लोश की ही जब कीर्ति-गाथा विद्वज्जनों को रसने लगी थी ,
 निराश से हो नृप जैतसिंह दुखी हुए स्वर्गत अन्त में थे । 54

सुपुत्र 'साहं-युत-सिंह⁴²' नामी उदारधी गागर-नाथ होके ।
 पड़े पुनः सोच-विचार में थे, विनाश रोकें किस भांति भारी । 55
 प्रयास ही वे करते रहे, लें समाज में वापस धर्म-भ्रष्ट ;
 न किन्तु हिन्दू ध्वज-धारि चेतें, बड़े न किंचित् सहयोग को भी । 56
 नृपाल पश्चात् जब राजगद्दी सुपुत्र बंठे 'यशवन्त सिंह' ,
 हुए शहंशाह उदार तो भी, हुआ न कोई हित हिन्दुओं का । 57
 परन्तु था मानव-धर्म-रक्षा के हेतु देता नृप को दिखाई
 ऐसी दशा में अनिवार्य—जल्दी रुके किसी भी विधि धर्म हानि । 58

38. विजेताओं । 39. हारे हुए । 40. दासता, जो चरित्र ही नष्ट कर देती है । 41. नव-विवाहिता । 42. साहंसिंह ।

पुत्र भूप यशवन्त के हुए ख्यात राव कड़ुवो' नराधिप ।
 थे तथा गुण यथा सुनाम था—तिक्तकेव⁴³ कटु शत्रु-ताप⁴⁴ को । 59

थे एकदा भूपति ध्यान-मग्न, तभी अनायास विचार आया—
 अनेक ऐसे बिगड़े हुए भी सदा बना ईश्वर काम देता । 60

न दो सहारा असमर्थता को, बना सकोगे तुम काम सारे ।
 न हो सके जो बल से कभी भी, सधे वही ईश-उपासना से । 61

द्विज भूले कर्तव्य निज, कौन बचाए धर्म ?
 उपदेशों का क्या अहो, भूप धर्म का मर्म ? 62

43. तिक्तक (चिरायता) के समान । 44. शत्रु रूपी ज्वर (चिरायता ज्वर की दवा है) ।

असह्य सम्पर्क अमित्र का है, प्रसन्न दीखे वह, या कि रुष्ट ;
 न नीर ज्यों पावक का हितैषी हुआ कभी, शीतल हो कि तप्त । 38
 असह्य ही राज्य अनार्य का है बने न जो मानव-धर्म-चारी ।
 ये दस्यु तो किन्तु अभारतीय आ छा गए शासन-तंत्र में थे । 39

प्रयत्न खीची करते रहे कि विद्वेष जाए मिट क्षत्रियों का ;
 हटें विदेशी इस भूमि से ही, स्वदेश का हो दुख दूर सारा । 40
 परन्तु क्या केवल राज्य-लिप्सा अधर्मियों के मन में बसी थी ?
 वे तो प्रकारान्तर से मिटाना ही देश की संस्कृति चाहते थे । 41
 वे चित्त तो देश-निवासियों का न तर्क से जीत सके कभी भी ।
 इस्लाम का व्यापक दौर-दौरा कृपाण किंवा छल-छद्म से था । 42
 शिक्षा-प्रदाता गुरु विप्र लोग स्वधर्म-कर्तव्य-विमूढ़ सारे ।
 राजा तथा रंक महा दुखी हो, भारी अविद्या-तम में फँसे थे । 43
 पाखण्ड फैला दरवेश³³ ढोंगी, मुरीद³⁴ बेटी-बहुएँ फँसाके ,
 अली-वली-सा घर नाम कोई, साधू बने अस्मत्³⁵ लूटते थे । 44
 निराश दम्पति मनोतियां ले, सन्तान पाते उनकी दुआ से ।
 आकृष्ट होके पद-मान से भी, स्वधर्म की थे करते उपेक्षा । 45
 सर्वत्र ही छत्र-चकौड़³⁶ जैसी पीरों तथा मौलवियों फकीरों
 की भीड़ दम्भी कपटी लगी थी धर्मद्विषों³⁷ के हित साधने में । 46

शनैः शनैः किन्तु विदेशियों के जमे यहाँ पैर कठोर ऐसे ,
 प्रतीत होता, वह भी निवासी सदैव से थे इस देश के ही । 47

33. फकीर, भिखारी । 34. चेली/चेली । 35. इज्जत, पातिव्रत्य । 36. बरसाती
 उपज कुकुरमुत्ता और चकवँड़ । 37. धर्म (मानवता) से द्वेष रखने वालों ।

ॐ

राष्ट्र-वन्दना

उद्धार कर वेदोक्त मानव धर्म फिर से रोपने
के हेतु शंकर-पीठ¹ जिसके चार कोनों में बने,
एकात्मता का सब मतों के मूल में मण्डन करें,
हम मातु-पितु-गुरु-तुल्य प्रिय उस राष्ट्र का वन्दन करें।

1. आदि शंकराचार्य द्वारा भारत के चार कोनों में स्थापित चार पीठ :
बदरिकाश्रम, द्वारिका पीठ, कदवीर पीठ (कोल्हापुर) और शारदा पीठ (शृंगेरी,
मैसूर राज्य)। अंतर्दृष्टि का अनुच्छेद 4.5.3 (पृष्ठ 59-60) भी देखिए।

वन्दे भारत मातरम्

विप्र राम¹ अवतार ले, विपथित²-क्षात्र-सुधार
करनेहारे हरि करें, विपथित-विप्र-सुधार । 1
चाहे स्वयं न अवतरें, भेजें कोई भक्त ,
जिनसे हारे हरि स्वयं, सुना, कि हो अनुरक्त । 2

हुए अनल से³ प्रकट जब, क्षत्रिय चार⁴ सशक्त ,
अनल-वंश में क्यों न अब, प्रकटें फिर हरि-भक्त ? 3

नृपति कङ्करोराव-सुत हरि-भक्त 'पीपाजी' हुए ।
शान्ति-सेवी थे नृपति, सुत अभ्युदय-सेवी हुए ।
वंश खीची भी सुशोभित था हुआ आकाश सा ,
पश्चगत राकेश भी दे पूर्व सूर्योदय लसा । 4

राज-चिह्न निज पुत्र को दिया त्याग भोग-भव भीति भूष ने ;
भक्ति-पूर्वक सुनाम राम का ले समुद्यत हुए अरण्य को । 5

मान शासन⁵ महान भार तो पितृ-वत्सल सुपुत्र ने लिया ,
जान निश्चय परन्तु तात से पैर छू कह दिया, 'न जाइए' । 6

1. परशुराम । 2. पथ-भ्रष्ट । 3. अग्नि (यज्ञ, अग्निहोत्र) से या अनलराव के समान । 4. अनलराव, वीरवर, दुर्जनाकुण और कुंचलदेव, जो क्रमशः चौहान, परमार, सोलंकी और परिहार वंशों के अग्र-गुरु थे । (विस्तार के लिए पहिली किरण का पूर्व खण्ड, अनल-सुदय पृष्ठ 105 देखिए) । 5. शाजा ।

साश्रु पुत्र लख पुत्र-प्रेम में मग्न हो प्रिय किया स्वपुत्र का ;
किन्तु श्री⁶सुमति⁷ने न ली पुनः त्यक्त केंचुल⁸ न ले फणी⁹ यथा । 7

अन्तिमाश्रम¹⁰ लिए उदार-धी गांव-बाहर बसे जितेन्द्रिय ;
और आत्मज-वधू समान ही राज-लक्ष्मि करती उपासना । 8

चिह्न नृप एवं यती के धर युवा¹¹-प्रवया¹² लसे ।
धर्म के फल-युग्म उन्नति-मोक्ष के अवतार से ।
कर्म-सांख्य समन्वयेच्छुक काम में भी राज के ,
लग गए उद्धार में युग देश-जाति-समाज के । 9

राव पीपाजी प्रयोक्ता कुशल पार्थिव-नीति के ;
लोक-नायक, लोक-रंजक, विज्ञ लौकिक रीति के ;
राज्य-लक्ष्मी-प्राप्त भी निज जनक-सम हरि-भक्त थे ।
नित्य जन-कल्याण में सब सचिव भी अनुरक्त थे । 10

नित्य नियमित रूप से नृप ईश की आराधना ,
साथ ही स्वाध्याय करते, मौन की मी साधना ।
किन्तु या अविचार उनको एक खलता नित्य ही —
धर्म-भ्रष्टों को पुनः हम, शुद्ध क्यों करते नहीं । 11

हानि भीषण देख भी क्यों आँख रखते बन्द हैं ?
विज्ञ विद्वज्जम सभी क्यों हो रहे मति-मन्द हैं ?
वात जो सीधी, इन्हें क्यों दीखती अनरीति है ?
हैं विनाशोन्मुख, तभी क्या बुद्धि भी विपरीत है ? 12

6. राज्य-लक्ष्मी । 7. अच्छी बुद्धिवाले (राजा कड़ुवोराव) । 8. सांप
के शरीर का झिल्लीदार चमड़ा जिसे वह अपने आप उतारकर छोड़ देता है ।
9. सांप । 10. सन्यास-आश्रम । 11. युवक (राजा पीपाजी) 12. बूढ़
(कड़ुवोराव) ।

दम्भ थोथा, गर्व ओछा धार बनते विज्ञ हैं ,
धर्म-व्याख्याता बने, वे नियति से अनभिज्ञ हैं ।
काल-गति से सीख भी वे क्यों न लेना चाहते ?
जानकर क्यों छेदवाली नाव खेना चाहते ? 13

ब्रह्म-बल पाखण्ड के ही रह गया समतोल है ।
बिक चुके¹³ क्या विप्र ऐसे ही न मिट्टी-मोल हैं ?
मन्दिरों की देश भर में क्या न दुर्गति हो चुकी ?
मूर्तियाँ बल-तेज सारा क्या न अपना खो चुकीं ? 14

हो जिसे विश्वास जिस भी धर्म में मत पन्थ में ,
छोड़ दे उसको, लिखा यह है भला किस ग्रन्थ में ?
लोभ दे या भय दिखा ही धर्म-परिवर्तन हुए .
किन्तु क्या विश्वास के स्थल हृदय-परिवर्तन हुए ? 15

धर्म ही वह तत्त्व है, जो सिद्ध निःश्रेयस करे ।
आत्म-उन्नति के लिए ही धर्म नर धारण करे ।
किन्तु अब केवल रहा जब धर्म रोटी-दाल में ;
मानिए इस धर्म का तब नाश कुछ ही काल में । 16

एक दिन ध्यानस्थ पूजन - कक्ष में जब भूप थे ,
सौम्य मुद्रा में सुशोभित पूर्ण शान्ति स्वरूप थे ,
स्वेद मुख से वक्ष पर गिर नाभि तक था बह रहा ,
ज्यों दिवश्चयुत¹⁴ देव-धुनि¹⁵ हो पा रही सागर¹⁶, अहा ! 17

13. यवन आक्रान्ता भारत से हजारों व्यक्ति गुलाम बनाकर ले जाते थे, जिनमें बहुत से विद्वान पंडित भी हुआ करते थे । ये गुलाम वहां दो-दो रुपये में बेच दिए जाते थे । 14. स्यगं (आकाश) से गिरी हुई । 15. गंगा नदी । 16. समुद्र (नाभि की उपमा समुद्र से देने से उसकी गहराई व्यंजित होती है और गहरी नाभि सुन्दर समझी जाती है) ।

उतर गिरि पर से सुतनु¹⁷ कुछ धार जाती फैल सी,
भर उदर-त्रिवली¹⁸ सहायक सरित सी लेती लसी।
हो रहा-आभास सा था ईश-साक्षात्कार का,
और अन्तःकरण में था लेश भी न विकार का, 18

उग्र एक विचार ने भी स्थान मन में कर लिया —
क्यों नहीं शास्त्राथं द्वारा जाय निर्णय कर लिया ?
मान आज्ञा ही इसे उस जग-नियन्ता नाथ की,
शोघ्र सम्मति भी पिता की नृपति ने निज साथ की ; 19

और आशीर्वाद भी कर प्राप्त उस यतिनाथ¹⁹ का,
कर ग्रहण उपदेश अनुपम धीर-वीर नहीं थका।
तात बोले—“पुत्र, तुम जय-शील, संयम-शील हो।
देश-जाति-समाज हित अब भी सफलता ही लहो²⁰। 20

“हो मनोबल दृढ़ तथा शुभ कर्म का संकल्प हो ;
पूर्ण हो संकल्प; विचलन इस नियम में स्वल्प हो।
सतत रखना ध्यान, झलके द्वेष तनिक न वाद में ;
प्राप्त कर विश्वास रखना पर्यवस्था²¹ बाद में। 21

“ज्ञान का हो गर्व, फिर भी छू अहं पाए नहीं।
गर्व हर लो अन्य का पर निज, विनय जाए नहीं।
ज्ञान का फल ही विनय है, विनय का पात्रत्व है ;
पात्रता से धन, सुयश, सुख, काम्य आनंद-तत्त्व है²²। 22

17. पतली। 18. पेट की तीन रेखाएं जो बैठने पर त्वचा सिकुड़ने से बन जाती हैं। 19. कड़ुबोराव। 20. प्राप्त करो। 21. विरोध की बात।
22. तुलना कीजिए :

विद्या वदाति विनयं, विनयात् याति पात्रताम्।

पात्रत्याहुनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

अर्थात् विद्या (ज्ञान) से विनय आता है और विनय से पात्रता। फिर पात्रता से धन, धन से धर्म और उससे सुख प्राप्त होता है।

"सन्त रामानन्द विद्वत्-वर्य काशी में बसे ,
कर रहे कृतकृत्य सबको अमृतमय उपदेश से ;
धर्म-चिन्तन में निरत निज शिष्य-दल रखते सदा ।
यदि वरद-कर दें तुम्हें तो प्राप्त हो जय-सम्पदा ।" 23

जनक²³ जैसे तत्त्वदर्शी जनक²⁴ के सुत योग्य ही ,
शास्त्र-ज्ञाता, नीति-नागर, विज्ञ होते क्यों नहीं ?
जनक²⁴ के आदेश की जब पुत्र करने पूर्ति ही
चल पड़े, सब ओर से तब क्यों न पावे स्फूर्ति²⁵ ही । 24

सब समाज-सुधारकों ने दी बधाई इसलिए ;
विज्ञ षट्-वयस्क सबने की बड़ाई इसलिए ;
राज्य की सारी मनीषा का समर्थन प्राप्त था ;
इस विषय में सब मतों का भी अनैक्य²⁶ समाप्त था । 25 .

एक सम-शीतोष्ण सुन्दर प्रात अति-शोभा-सने
अश्व-रथ-गज-शकट²⁷ लेकर सुदृढ़ अनुचर भी घने ,
धर्म-शास्त्रों के प्रकाण्ड सुविज्ञ पण्डित साथ ले ,
तीर्थ-यात्रा के वहाने राव पीपाजी चले । 26

दीर्घ बाहु विशाल जिसके वक्ष सी थी बुद्धि भी ;
प्रखर मति-अनुरूप जिसने थे पढ़े आगम²⁸ सभी ;
कार्य जो प्रारम्भ करते, शास्त्र-विधि का ज्ञान ले ;
नित्य शुभ-आरम्भ-जैसा-अन्त-द्रष्टा²⁹ नृप चले । 27

23. मिथिला के राजा जनक । 24. पिता । 25. प्रोत्साहन, प्रेरणा ।
26. विरोध, मतभेद । 27. छकड़े । 28. शास्त्र । 29. फल पाने वाले । जैसी
विशाल भुजाएं थीं, वैसी ही चौड़ी छाती थी; वैसी ही उदार बुद्धि थी । प्रखर
बुद्धि के अनुरूप ही उन्होंने सब शास्त्र पढ़े; शास्त्रानुमोदित विधि से वे सत्कार्य
आरम्भ करते थे; और अच्छे आरम्भ के अनुकूल अच्छा फल (अंत) भी
देखते थे ।

थी न विषयों में जिसे रुचि, ईश में दढ़ भक्ति थी ;
प्राप्त विद्याएं जिसे सब, धर्म में अनुरक्ति थी ;
वृद्ध जैसे पूज्य लगते आयु कान्त³⁰ नवीन ले ;
श्रेष्ठ गुण-सम्पन्न पार्थिव राव पीपाजी चले । 28

कार्य-सिद्धि बता रही जो वायु भी अनुकूल थी ;
सामने से आ सुगन्धित हो रही सुख-मूल थी ;
हय-शफाहत³¹ धूलि-कण सब, आशु³² जाती दूर ले ;
और रज-अस्पृष्ट-आनन³³ ले नृपति आगे चले । 29

चक्र-ध्वनि³⁴ घन-घोष-सी सुन नृत्य जो करने लगे ,
अचिर गत-भ्रम³⁵ मोर कलरव में मिला केका³⁶ भगे ।
कृष्णसार³⁷ सुपन्थ तजते कर स्वनेत्र कृतार्थ³⁸ ही ,
नृपति-नेत्र निहार, फिर निज सहचरी दृग साथ ही । 30

मिल रहीं मंगल-कलश-युत ग्राम-वालाएं सभी ।
दे रहे अव्यर्थ³⁹ आशिष अर्घ्य पाकर विप्र भी ।
थे खड़े सम्मान में सब घोष⁴⁰ भी नवनीत ल ।
पूछते वन-वीरुधों⁴¹ के नाम उनसे नृप चले । 31

मार्ग में ऊंचे पठारों पर चले चढ़ते हुए ।
प्रात नत राकेश लखते भानु भी चढ़ते हुए ।
ज्यों तुना का पात्र गिरता एक उठता अन्य है ।
या हुआ करता नतोन्नत नित्य धर्माधर्म है । 32

30. सुन्दर, प्रिय । 31. घोड़ों की टापों से चोट खाकर (उड़े हुए) ।
32. शीघ्र । 33. धूल पीछे जाती थी, अतः मुख पर नहीं पड़ती थी (क्योंकि हवा सामने से आ रही थी) । 34. रथ के पहियों का शब्द । 35. शीघ्र ही भ्रम मिट जाता था कि यह मेघ-गजंन नहीं था । 36. मोर का शब्द । 37. काने मृग । 38. राजा के नेत्रों की अपनी सहचरी (मृगी) के नेत्रों से तुलना करते थे; किन्तु राजा के नेत्र अधिक सुन्दर थे, इसलिए उन्हें देखकर अपने नेत्र कृतार्थ करते थे । 39. निष्फल न होनेवाले । 40. ग्वाले । 41. वृक्षों ।

विन्ध्य मां का देख मन्दिर सदय नरपति रो पड़े ।
 आर्त-अज-कन्दन जहां सब देखते-सुनते खड़े ।
 शक्ति के क्या पूजकों की बुद्धियां चरने गईं ।
 जो दुखी कर जीव को सुख चाहते अपने तई⁴² ? 33

निरख सन्ध्या-निरत⁴³ नृप को विनत होता भानु भी ।
 लांघ यों विन्ध्याटवी के तट-नदी, गिरि-सान्⁴⁴ भी ,
 कुछ दिनों में देव-धुनि-तट प्राप्त कर रमणीक सा ,
 सब वहीं ठहरे शिविर सा भव्य सुखदायी वसा । 34

पूर्व-प्रेषित सेवकों ने कर दिया शोभा-सना ,
 उपनगर ही एक निर्मित मार्ग-विशिखाएं⁴⁵ बना ,
 अचिर रुचिर वितान⁴⁶ ताने विविध पट-कुटियाँ सजा ।
 सामने वाराणसी के वे रुके तट-पास जा । 35

ववल-पय-सा-यश-पयोनिधि सन्त रामानन्द का
 बढ⁴⁷ मिला हो स्वागतार्थी सा नराधिप-चन्द का ,
 नृपति फिर गुरु-पास गंगा-पार एकाकी गए ।
 कर सुधाकर-कर⁴⁸ प्रसारित लोक-नन्दन हो गए । 36

अचिर गुरु-आदेश से धन-सम्पदा सब साथ⁴⁹ की ,
 दान-करके अतुल सम्पत्ति, कीर्ति अपने साथ की⁵⁰ ।
 मृदित सन्त कबीर धार्मिक क्रान्तिकारी पा हुए ।
 शीघ्र शिष्यों में सभी के अग्रणी नृप हो गए । 37

42. विन्ध्याचल में विन्ध्यामाता (विन्ध्यवासिनी देवी) का मन्दिर है जहां लोग अपना कल्याण चाहते हुए बकरों की बलि देते थे। शक्ति के उपासकों के अज्ञान पर यह कटाक्ष है। 43. संध्या-उपाराना में लगे हुए। 44. चोटियां। 45. गांव के भीतर के मार्ग। 46. शामियाने। 47. आगे बढ़कर (चन्द्रमा को देखकर समुद्र का बढ़ना या ज्वार उठना प्रसिद्ध है। 48. किरणें। 49. जो अपने साथ लाए थे। 50. साथ में ले ली।

समय पर गुरु से निवेदित योजना नृप की नई ,
 द्वारिका-यात्रा सभी को मान्य सत्वर हो गई ।
 लौट गागर-गढ़ प्रतीक्षा समय की करने लगे ;
 और जीवन धर्म-पंजर में नया भरने लगे । 38

रख कुशल मन्त्रि-मण्डल तथा स्वामिभक्त सेवक घने ,
 दायित्व दिया निज पुत्र को राज-काज का नृपति ने । 39

निश्चिन्त पूर्णतः हो गए, कभी कहीं भी जा सकें ।
 कर विप्रों से शास्त्रार्थ भी, पार दम्भ से पा सकें । 40

मध्य खण्ड
महामिनिष्क्रमण

वन्दे भारत मातरम्

जो लोक-कल्याण सदैव चाहें, चाहे मिलें कष्ट स्वयं उन्हें ही ,
वे देव सारे विष-पान-कर्ता हैं पूज्य ही मानव मात्र द्वारा । 1

संसार के भोग-विलास छोड़े संन्यास भी ले करके लगे हो
जो धर्म के रक्षण में सदा हो, वे भक्त हैं या नृप, नित्य वन्द्य । 2

राजर्षि का निश्चय हो चुका था, वाराणसी से गृह-वयं¹ आएँ ,
तो वे मिलें पूर्ण विरक्त होके, हों ईश को अर्पण कर्म सारे । 3

समय पर निर्दिष्ट आए सन्त रामानन्द जी ;
संग सेन, कवीर, नरहरि, प्रिय, अनन्तानन्द जी ;
श्री धना, रैदास आदिक शिष्य सब चालीस ले ।
साधुवन सह-धर्मिणी युत, साथ पीपाजी चले । 4

व्योम में ज्यों वृध-वृहस्पति आदि ग्रह-उपग्रह लिए ,
धूमता रवि, ओट में है संकुचित तम को किए ,
तिमिर-नाशक रश्मियों की गति न सीधी हो भले ;
अज्ञता-तम त्यों भगते सन्त पीपाजी चले । 5

1. रामानन्द जी ।

ज्यों पवन पथ-पक-शोषण घटज-बिन² करते नहीं ,
 लोभ हरता ज्यों दयादिक-गुण-अपेक्षित तोष ही ,
 हिम गलाते क्या तपन-बिन³ उडु वृहत्तर पिण्ड⁴ ल ;
 दल-सहित अज्ञान हरने सन्त पीपाजी चल । 6

सिन्ध में धर्मान्तरण के ज्वार जब ऊंचे-चढ़े ,
 हिन्दुओं को डूबने से तब बचाने जो बड़े ,
 वीर झूलेलाल⁵ त्राता थे अकेले ही भले ,
 साथ ले सन्देश उनका सन्त पीपाजी चले । 7

व्याघ्र-प्रतिश्रुत दान लेने हेतु चेष्टा की जभी ,
 विप्र कंकण-लोभ में पड़ दे गया निज प्राण भी⁶ ,
 धर्म के उपदेश जिससे लोक हो निःशक ले ,
 धार गुरु-निर्दिष्ट गैरिक वस्त्र पीपाजी चले । 8

2. बिना अगस्त्य का उदय हुए (अगस्त्योदय होने पर मार्ग सूख जाते हैं) ।
 3. सूर्य के बिना । 4. तारे, जिनके पिण्ड सूर्य से भी बड़ होते हैं, सूर्य के बिना
 पाला नहीं गला पाते । 5. नसरपुर (हैदराबाद, सिंध) में ग्यारहवीं शती विक्रमी
 के आरंभ में जन्मे वीर झूलेलाल ने 'मखं' नामक मुसलमान बादशाह को
 धर्मकाकर हिन्दुओं का धर्मान्तरण रोका था और मानव मात्र को एक ही ईश्वर की
 पूजा करने का उपदेश दिया था । कराची के सनहोरे स्थान में उनका बनवाया
 ज्योति मन्दिर है, एक और मन्दिर नसरपुर में है । इन दोनों मन्दिरों में हिन्दु-
 मुसलमान दोनों समान अधिकार से एक ईश्वर की पूजा करते हैं । 6. 'हितोपदेश'
 की कथा के अनुसार एक बूढ़े बाघ ने सोने का कंकण दिखाकर राह चलते ब्राह्मण
 से कहा कि वह किसी गुप्तार्थ को कंकण दान करना चाहता है, अतः ब्राह्मण पास के
 तालाब में स्नान कर आए । जोभी ब्राह्मण गहाने गया तो दलदल में फंस गया
 और बाघ उसे मारकर खा गया । कथा की सीख यह है कि किसी के अस्वाभाविक
 आचरण पर विश्वास न करना चाहिए । पीपाजी भी धर्मोपदेश के प्रति जनता में
 विश्वास पैदा करने के लिए गेरुए वस्त्र पहिनकर चले ।

ज्योति-पिण्ड विशालतर हैं कोटि-कोटि खगोल⁷ में ;
पर निकटतम सूर्य की ही ज्योति है भूगोल⁸ में ।
पा निकट सुविचार सारा लोक जानालोक ले ,
धर अतः जन-सुलभ बाना सन्त पीपाजी चल । 9

दीखता प्राची-अरुणिमा-युक्न बालारुण तपा ।
ज्वाल या रक्ताभ तपता बीच पात्रक-पुंज पा ।
सदल शोभित कोकनद⁹ का कोष¹⁰ क्या किजल्क¹¹ ले ?
या किए कृतकृत्य भगवा वस्त्र पोपाजी चले । 10

द्वारिका-प्रान्तर¹² मिला जब कुछ लगा सुनसान सा ;
और आगे जब बढ़े, तो थी रमा कुछ नीरसा ।
पथ चला मरु-थल-परिधि को स्पर्श सा करता हुआ ;
वृत्त की मानो परिधि को स्पर्श-रेखा ने छुआ । 11

वायु किंचित् ऊष्ण अप्रिय सी प्रतीची से चली ;
अन्त भी सविरोध होगा, गन्ध यह माना मिली ।
लक्ष्मणा¹³-युत मात्र सारस-युग्म दिखता था कहीं ;
स्वल्प कुछ सहयोग मिलने का हुआ आभास ही । 12

किन्तु भग्नोत्साह पीपाजी हुए इनसे नहीं ।
मानते बाधा भला कुश-काँस की यूथप¹⁴ कहीं ?
मार्ग में रातें कई बस सन्त-दल चलता चला ।
सिन्धु-वायु प्रहृष्ट¹⁵ स्वागत हेतु आगे बढ़ मिला । 13

7. आकाश का गोला (ब्रह्माण्ड) जिसमें सूर्य से भी बड़े-बड़े करोड़ों ज्योति-पिण्ड हैं और हमें तारों के रूप में दिखाई देते हैं, या अत्यधिक दूरी के कारण बहुत से दिखाई भी नहीं देते । 8. पृथ्वी का गोला जहाँ सूर्य का ही प्रकाश पहुँचता है क्योंकि वह निकटतम है । 9. लाल कमल । 10. बीज-कोष । 11. केसर । 12. उजाड़, वृक्ष-जलादि-रहित (मार्ग) । 13. मादा सारस । 14. गजराज । 15. अति प्रसन्न ।

दृष्टिगोचर द्वारिका के क्षितिज में कलशे हुए ;
 हेम-मय¹⁶ रवि-रश्मि-रंजित कोकनद जैसे हुए ;
 उग रहे परिपूर्ण करने हेतु अम्बर-ताल¹⁷ को ,
 या पुरी लखती नयन कर विपुल¹⁸ साधु नृपाल को । 14

दीखने कुछ कम लगे अब वृक्ष भी खर्जूर के ।
 नारिकेल प्रभूत¹⁸, द्योतक सिन्धु-तीर अदूर के ।
 थे उपस्थित ले सुफल, जो याद भी देते दिला—
 पार शुष्क प्रदेश कर ही शस्य-श्यामल थल मिला । 15

जा जभी सबने बजाई दुन्दुभी सद्धर्म की ।
 दूर से ही सुन सभी ने सरल व्याख्या धर्म की ,
 प्राप्त नूतन चेतना की, और यह अनुभव किया—
 धर्म पण्य¹⁹ नहीं कि जिसका जा सके विनिमय²⁰ किया । 16

पथ²¹ कितने भी जुदा यों चल पड़ें व्यवहार में ;
 किन्तु मानव-धर्म तो है एक ही ससार में ।
 आचरण जैसा स्वयं-प्रति अन्य से चाहे नहीं ,
 वह किसी के प्रति न करना, धर्म सच्चा है यही²² । 17

धृति अकोप, अचोयं, संयम, सत्य एवं शौच भी ,
 क्षान्ति, विद्या, बुद्धि, इन्द्रिय-निग्रहादिक गुण सभी ,
 धर्म के लक्षण नरों के हेतु ऋषियों²³ ने कहे ,
 धर जिन्हें मानव सुरों की कोटि में आते रहे । 18

16. सुनहरे । 17. आकाश रूपी तालाब । 18. बहुत से । 19. सौदा,
 जो खरीदा या बेचा जा सके । 20. बदला-बदली । 21. सम्प्रदाय, मत ।
 22. तुलना कीजिए :

श्रूयतां धर्म-सर्वस्यं, श्रुत्या चैवावधार्यताम् ;
 आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

23. मनुस्मृति (6.92) से तुलना कीजिए (देखिए पाद टिप्पणी 19 पृष्ठ 37) ।

किन्तु इनसे रहित नर तो, नर नहीं पशु हैं निरे ;
 दम्यु बन आचरण करते म्लेच्छ असुरों से गिरे ।
 एक केवल धर्म ही तो मनुजता का चिह्न है ।
 श्रेष्ठ नर में धर्म है पशु से तभी वह भिन्न है²⁴ । 19

त्यागना उस धर्म को है त्यागना मनुजत्व भी ।
 भूल या भय से किसी का धर्म यदि छूटे कभी ,
 शीघ्र प्रायश्चित्त करवा बन्धु अपना लें उसे ,
 गिर पड़े जो पंक में तो द्रुत उठा धो लें उसे । 20

किन्तु दृढ़ प्रतिरोध उनको द्वारिका में जा मिला ,
 कथित धार्मिक पण्डितों से, स्वार्थ का जिनका किला
 हिल रहा था, सन्निकट लख ध्वस्त होने की घड़ी ,
 उड़ सकेगी क्योंकि कच्चे सूत पर कब तक गुड़ी²⁵ । 21

जीतकर शास्त्रार्थ में सब को किया निज पक्ष में ।
 नमित होते हैं यथा तृण पवन के नित पक्ष में ।
 पर न मन से वे कभी भी साथ इनके हो सके ;
 पुण्य, पावात्मा न जैसे सरलता से बो सके । 22

किन्तु जन-समुदाय ने अति हर्ष से स्वागत किया ;
 क्योंकि नेता छोड़ कोई भी सुधी होते न क्या ?
 सफल नित सत्संग प्रवचन-सहित संत-समाज के ,
 मनन श्रद्धा-सहित नियमित कर न कोई भी थके । 23

24. तुलना कीजिए :

धर्मो हि एकोऽप्यधिकं नराणां, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।

भर्तृहरि, नीति शतक ।

25. पतंग ।

धर्म-प्रिय जनता बचे फिर ढोंगियों के ढोंग से ,
 क्रुद्ध होकर फिर न आहत सर्प जनता को डसे ,
 बाँधने को शक्ति भर फिर शक्ति-पूर्ण भविष्य को ,
 छोड़ कुछ दिन हेतु पत्नी-सहित नरपति शिष्य को , 24

सदल रामानन्द स्वामी यों गए निज देश को :
 तृप्त करने के लिए ही ज्यों सतृष्ण प्रदेश को ,
 जलधि से चल, मेरु से भिड़, फिर उसे कर आर्द्र ही ,
 जलद-मण्डल वारि-धारा छोड़ जाता क्या नहीं ? 25

आठ दिन तक घूम-फिर कर सन्त पीपा ने वहाँ ,
 सब सुथल देखे, बसे थे द्वारिका-नायक जहाँ ,
 महल मन्दिर, भवन आदिक । बीचियों की सिन्धु की ,
 देख अनुपम छवि न दम्पति-वयं की आँखें छकीं । 26

प्राप्त कर सौजन्य सबका, पा प्रशंसक भी घने ,
 छाप संचालित हरी²⁶ की, की वहाँ नर-सिंह ने ,
 लें जिसे चिर काल तक सब तीर्थ-यात्री प्रेम से ;
 जाति का न समाज का ही मान्य बन्धन हो उसे । 27

लौटने वे भी लगे निज देश को बहुमान ले ;
 वृष्टि-जल प्लावित²⁷ किए जिस भांति थल को बह चले
 छाप भी देता हरी²⁸, भर नद-नदी-नाले सभी ,
 पथ जलधि का ले, बिना कुछ भेद-भाव किए कभी । 28

26. पापाजी द्वारा चलाई हुई हरि-छाप अभी तक द्वारिका में प्रचलित है।

27. डुबो (सराबोर) करके। 28. पृथ्वी को हरियाली से भर देता है (संकेत पापाजी द्वारा चलाई 'हरी' की छाप की ओर है)।

एक द्विज, अभिभूत²⁹ आहत, ने स्वयं असमर्थ हो ,
सन्तवर को मारने को था यवन भेजा, अहो !
वह हरण कर ले गया सह-धर्मिणी को मार्ग से ;
किन्तु थे निश्चिन्त पीपाजी परीक्षा कह इसे । 29

धर्म है पति का कि पत्नी की सदा रक्षा करे ;
किन्तु पत्नी भी न अबला ही बनी ताका करे ।
तुल्य हों अर्द्धांग दोनों, शुद्ध तब दाम्पत्य हो ;
स्वावलम्बी फिर स्वरक्षा में बराबर क्यों न हों ? 30

थी कुशल वह तो स्वयं ही आत्म-रक्षा में सती ।
वीर रमणी थी परीक्षा-हेतु अवसर देखती ।
पास अपने गुप्त रखती शस्त्र जो पर्याप्त हों ,
छेड़नेवाले भगाने को, कई वे क्यों न हों । 31

सत्य है ध्रुव, साधु बनने से सुलभ है साधना ;
किन्तु दुष्ट असाधुओं का भय रहे फिर भी बना ।
ब्रह्म-चर्चाएँ बचाने हेतु काम न आ सकें ;
इन शठों से शाठ्य-रोधी शस्त्र मात्र बचा सकें । 32

क्या न विश्वामित्र नरपति, जब हुए तप-लीन थे ,
राक्षसों से यज्ञ-रक्षा में हुए अति दीन थे ?
इसलिए फिर राम-लक्ष्मण का लिया सहयोग था ।
मात्र तप-बल का भरोसा मोघ³⁰ एक प्रयोग था । 33

राघवों के बाद भी तो राक्षसों के नाश में ।
हेतु बनकर क्षात्र लाया अनल-वंश प्रकाश में ।
शस्त्र-शिक्षा शास्त्र-शिक्षा का सदा उपयोग है ;
और तप-बल भी इन्हीं का मात्र उचित प्रयोग है । 34

बाँध नद, जल-राशि थोड़ी भेज कुल्या³¹-मार्ग से ,
 एक को जो दो करे, क्या श्रेय है कोई उसे ?
 भूमिगत³² हो फिर नदी या सिन्धु में मिलता वही ।
 है जिन्हें तादात्म्य³³, कोई भिन्न कर सकता नहीं । 35

मार्ग में आगे कुशल सह-धर्मिणी सीता मिलीं ;
 हरि³⁴-विदारित-मृत-कलुष³⁵-अरि-पास अनचीता मिलीं ।
 धन्यवाद अपार हरि³⁶ को दे पुनः दम्पति चले ;
 उच्च जय-घोषोर्मि-युत पुर-सिन्धु में वे जा मिले । 36

आर्त संसृति को दिखाने मार्ग ध्रुव कल्याण का ,
 आर्य-संस्कृति के लिए भी खोलने पथ त्राण का ,
 भार सुत 'कल्याण' को दे राज्य के कल्याण का ,
 पर्यटन करने चले नृप-वर स्वदेश महान का । 37

वीर-जननी-भूमि में ही सन्त भी होते रहे ।
 फूटते मरु-भूमि में भी भक्ति के सोते रहे ।
 पत्थरों में क्या निकलती फूट हरियाली नहीं ?
 होंठ से लग छूटती हरि-प्रेम की प्याली कहीं ? 38

एकदा हरि-भक्ति का जो स्वाद चख पाया कभी ,
 मुग्ध कर सकती उसे क्या विश्व की माया कभी ?
 चल पड़े तज राज्य, धार्मिक दिग्विजय के हेतु ही
 सन्त पीपार्जी, तथा गौ³⁷ पुत्र ने उनके दुही³⁸ । 39

31. नहर । 32. जल का भूमि में शोषण हो जाता है और भूमि के नीचे
 ही नीचे वह जल नदी या सिन्धु में जा मिलता है । 33. दो का आपस में मिलकर
 एक हो जाना । 34. गिह । 35. पापी । 36. ईश्वर । 37. पृथ्वी । 38. दोहन
 (उपभोग) किया ।

कल्याण सिंह-सुत जब हुए 'भोज सिंह' नरपालवर ,
वसुमती हुई राजन्वती^{३०}, अपर भोज इव प्राप्त कर । 40

सीता तो साध्वी हो गई, अपने पति के साथ ही ।
पर पुत्रादिक में शक्तिदा, उनकी ही शिक्षा रही । 41

उत्तर खण्ड

शक्ति-संचयन

वन्दे भारत मातरम्

हे शक्ति, विश्व-संचारिणी, -सृष्टि का कर्तृत्व तुम ।
हो प्रभु की प्रभुता भी तुम्हीं, चेतनता का तत्त्व तुम । 1

तुम ग्रह-उपग्रह-नक्षत्र में, स्वर्ग-गा-ब्रह्माण्ड में ,
क्षिति-जल-पावक-नभ-वायु में, भाण्डारित में भाण्ड में , 2

हो तुम्हीं रुद्र-वसु-इन्द्र में, तुम्हीं सिन्धु में, भानु मे ,
तुम जीवों में, जीवाणु में अणु-परमाणु-कृशानु में , 3

चर-अचर-नियन्ता जगत में, एक तुम्हीं तो नित्य हो ।
वस क्यों न हमारे हृदय में, कर देती कृतकृत्य हो ? 4

हे धर्म-दुन्दुभी भी कभी, बिना शक्ति वजती नहीं ।
पा संरक्षण ही शक्ति का, सफल भक्ति बनती कहीं । 5

मानवता मानव-धर्म है, सो न मिले हरि-भक्ति बिन ।
पर दानवता तो प्रकृति है, जिससे त्राण न शक्ति बिन । 6

वस भक्ति-शक्ति का मेल ही तो शाश्वत युग-धर्म है ।
यह महती सेवा राष्ट्र की, क्षत्रिय का शुभ कर्म है । 7

हुए सुपुत्र 'अचलसिंह' भोज राजा के ,
स्वनामधन्य हुए गुण सभी जिन्हें पाके ।
स्वराष्ट्र व्योम में उस अद्वितीय योद्धा ने ,
स्वदेश-प्रेम की किरणें बिखेर दीं आके । 8

अनेक उपग्रहों का बना लिया मण्डल ,
स्वकर¹ पसार उन्हें भी प्रकाश में लाके ।
नरेश दूर तथा पास के बड़े-छोटे ,
हुए प्रभाव से आकृष्ट अचल² राजा के । 9

अनेक सोचते नरेश स्वाभिमानी थे—
सफल-प्रयास बनें एक-सूत्रता लाके ।
अगर समस्त राजपूत एक हों अब भी ,
भगें अमित्र अचिर, मात³ हम्हीं से खाके । 10

उन्हें दिखा कि अचल सूत्र हाथ में यदि लें ,
छुटें मुहीम⁴ में छक्के अमित्र सेना के ।
नृपाल नामधर न कौन बढ़ेगा आगे ,
अचल⁵-समान अचल सिंह को अचल⁶ पाके । 11

नृपाल-नीति-निपुण नामक्यों न चमकाए ,
यथा सुवर्ण हो प्रदीप्त अग्नि में जाके ?
अनल-सरोज⁷ सुरभि क्यों नहीं बिखरेगा ,
अचल-स्वरूप लोक-बन्धु⁸ की प्रभा पाके ? 12

1. अपने हाथ (सहायता का हाथ अचल सिंह के पक्ष में) या अपनी किरणें (सूर्य के पक्ष में, जो अपनी किरणों से सभी उपग्रहों को प्रकाशित करता है) ।
2. अचलसिंह । 3. हार, पराजय । 4. युद्ध । 5. पवंत । 6. अडिग । 7. अनल-वंश रूपी कमल । 8. अचल सिंह रूपी सूर्य ।

लेने को कुछ नरपति साथ, खीची ने फैलाए हाथ ।
मध्य देश से काफी दूर, यत्न किए नृप ने भरपूर ।
प्राप्त कर मैत्री नृपति कुछ गागरौन नरेश की ,
लाज रखने के लिए निज क्षत्रियोचित वेश की ,
हो गए कटिवद्ध करने हेतु सेवा देश की । 13

मोकल जी मेवाड़-नरेश, खोज चुके जब सारा देश ,
सात सुतों की सम्मति साथ लेकर निज कन्या का हाथ
दे दिया नृप अचल को, जिसकी न उपमा हो सकी ।
शारदा भी युगल-छवि के सकल वर्णन में थकी ।
फिर हुए कटिवद्ध करने हेतु सेवा देश की । 14

तभी अचल ने लिया वचन—जभी त्रास दें हमें यवन ,
या उनके प्रति चलें सदल⁹, राणा दें सारा निज बल¹⁰ ;
हो सुनिश्चित प्रतिक्रिया यह मात्र मम सन्देश की ,
मिल बढ़ें हम बोलकर 'जय एकलिंग महेश की' ।
यों रहें कटिवद्ध करने हेतु सेवा देश की । 15

नृपति बघेला भी रीवा के बड़े जोड़ने को सम्बन्ध ;
कन्या देकर खीची-कुल में अपना ऊंचा नाम किया ।
प्राची¹¹ और प्रतीची¹² में यह हुआ देश-हितकारी मेल ।
था नदीश¹³ ने भिन्नमुखी¹⁴ दो नदियों को अंकस्थ किया ।
गागरौन के बने बली युग भुज उदार रीवा-मेवाड़ ।
तीनों ने बढ़ मानो बीड़ा देशोद्धार निमित्त लिया ।

9. सेना लेकर धावा बोलें । 10. सेना । 11. रीवा (जो पूर्व में है)
12. मेवाड़ (जो पश्चिम में है) । 13. समुद्र (अचल सिंह) । 14. भिन्न
दिशाओं (एक पूर्व और दूसरी पश्चिम) वाली ।

देवी¹⁵ सती लालबाई ने किया सपत्नी का सत्कार ,
 शिव-प्रिया गंगा को जैसे अद्रि-पुत्र¹⁶ ने मान दिया ।
 साँवलदास नृपति ईडन के हुए देख सम्बन्ध प्रमन्न ;
 यथायोग्य सहयोग-दान का गागरौन¹⁷ को वचन दिया । 16

कर सुसंगठित यों नृप-दल, और बढ़ाकर अपना दल ,
 अरि की टोह हेतु उपयुक्त, कुशल गुप्तचर किए नियुक्त ।
 कुछ दिनों के बाद मालव देश से होशंग¹⁸ ने,
 की चढ़ाई नृप अचल पर ले कुशल सैनिक घने ।
 नृपति खीची को लिया यों ग्रस यवन-दल-राहु ने । 17

ज्येष्ठ पुत्र 'पातल'¹⁹ के सग, करते थे नृप अरि-दल भंग ।
 'धीरज'²⁰ सुवन देख बल-ह्रास, पहुंचे निज मातमह²¹ पास ।
 सूचना पाते किया प्रस्थान मोकल देव ने ।
 हो लिए सरदार भी कुछ साथ हित-कामी बने ।
 नृपति खीची को रखा था ग्रस यवन-दल-राहु ने । 18

पर वह था पडयन्त्र प्रबल, सरदारों ने करके छल ,
 एक रात पा विजन विपिन, असि-तट²² पहुंचाए गिन-गिन ।

15. बड़ी रानी (मेवाड़-नरेश मोवल जी की बेटी) । 16. पार्वती ।
 17. गागरौन के राजा अचल सिंह । 18. मालवा का सूबेदार होशंग-
 शाह । 19. अचल सिंह की मेवाड़ वाली रानी लालबाई के दो पुत्र थे : ज्येष्ठ
 पुत्र पातल सिंह ने पावागढ़ में राज्य किया, जिनके वंश की दो रियासतें, उदयपुर
 और वारिया गुजरात में मौजूद हैं । 20. दूसरे पुत्र धीरज सिंह या धीरन देव ने
 मऊ में राज्य किया जिनके वंश की रियासत खिलचीपुर मौजूद है । 21. नाना
 (मोकल देव) । 22. तलवार के घाट । मोकल देव अचल सिंह की सहायता के लिए
 आ रहे थे और साँवलदास तथा 'चाचा' 'मेरा' आदि सरदार भी साथ हो लिए थे ।
 साँवलदास ने घनिष्ठता करके ताड़ लिया था कि 'चाचा' और 'मेरा' नामक
 सरदार पडयन्त्र करके मोकल सिंह के प्राण लेकर अपने पिछले किसी अपमान का
 बदला चुकाना चाहते थे । उन्होंने राजा को संकेत भी कर दिया था । परन्तु
 एक रात जब जंगल में पड़ाव पड़ा तब विषवासघाती 'चाचा' और 'मेरा' ने हमला
 करके सबको मार डाला; केवल राजकुमार कुम्भा की रक्षा हो सकी ।

गंध पाकर था किया संकेत साँवलदास ने ।
पर चली किसकी भला भवितव्यता के सामने ।
नृपति खीची को किया कवलित यवन-दल-राहु ने । 19

नृप के पार्थिव अवशेषों के दर्शन करती आंसू रोके ।
पटमहिषी भीतर ही भीतर जलती थी निज सब कुछ खोके । 20

लोगों की पंक्ति न थी समाप्त जब देवी का निर्देश प्राप्त-
कर हँधे गले से बोल पड़े यों कुलगुरु सान्त्वन-वचन आप्त । 21

“इस जग की अद्भुत गति देखी; लोगों को करते अति देखी ;
प्रतिकार-हेतु ही महानाश अपनाती हुई कुमति देखी । 22

“‘चाचा’, ‘मेरा’ सरदार सभी क्या काल-कवल होंगे न कभी ?
पर उनकी मेचकताई²³ पर, थूकेंगे सौ-सौ बार सभी । 23

“जब सज्जन फँसते संकट में, तब नौका लाने को तट में ,
निज वैयक्तिक अभिमान छोड़ विश्वास जमाते केवट में । 24

“पर पापी तो ऐसे होते, जो कल्मष-घट²⁴ सिर पर ढोते ;
जल-मग्न लोक-नौका करके दुख-जलनिधि में खाते गोते । 25

“जो चले गए वे अमर बने; पापी जीते धिक्-पात्र बने ।
होनी होगी ही; किन्तु न क्यों सत्साधन ही नर मात्र बने ? 26

“दिल्लीपति मालव का साथी था, साथ नियति भी कुलटा थी ।
अपने वन गए देश-द्रोही; यों चारों ओर निराशा थी । 27

“बलिदान हुए रण में खीची; होने न पताका दी नीची ।
मानी ने वो स्वातन्त्र्य-बेलि, जीवन भर शोणित से सींची ।” 28

फिर ‘पातल’ को पावागढ़ में अरु ‘धीरज’ को राघोगढ़ में ,
जनपद-रक्षा हित आज्ञा दे, देवी प्रगटीं जन-दृग-पथ में । 29

23. कालिमा, कलंक । 24. पाप का घड़ा ।

वे अपने ही नैहर वाले, निकले काली करनी वाले ।
पटमहिषी डूबी महाशोक में, महाग्लानि मन में पाले । 30

मेवाड़ कलंकित हुआ जान, उस राजवंश का दोष मान ,
कालिख धोने को किसी भांति, देवी ने मन में लिया ठान । 31

जन-मानस उद्वेलित करके, फिर देश-भक्ति उनमें भरके ,
प्रायश्चित्त करने चली स्वयं, अपनी ही आहुति दे करके । 32

माथे दे ईंगुर का टीका, हाथों रचा रंग मेहँदी का ,
मुक्त लटें चिकने बालों की, उड़ती वास पुष्प-मालों की , 33

पंचरंग चूनरि सोहति कैसे, राग लपेटि सतोगुण जैसे ,
आँखें मूंद हुई ध्यानस्थ, बैठीं पति-सिर कर अंकस्थ । 34

कुल-गुरु बोलें, “माता की जै, आशीर्वाद प्रजा को दीजै” ।
हाथ उठा तब बोलीं रानी— “जै खीची-गण कुल-अभिमानि ; 35

“जै श्री एकलिंग प्रभु की जै; भावी खीची-गणपति की जै ।
क्षत्रिय वैमनस्य बिसराएँ, देश-प्रेम के गाने गाएँ । 36

“दस्यु-दासता दूर भगाएँ, आहुतियाँ ये व्यर्थ न जाएँ ।”
कहते-कहते वाणी ठिठकी, लेट गई तो आई हिचकी । 37

तब देवी ने कुंभक²⁵ साधा, मन में योगानल आराधा ।
गायत्रीका स्वगत जाप कर अचल सिंह पर अचल ध्यान धर , 38

लगी योग से सांस रोककर महिषी प्राण चढ़ाने ऊपर ।
प्राण-वायु जो अंग छोड़कर चढ़ता जाता तन में ऊपर , 39

वह द्रुत चेतनता से नाता तज निश्चल हो सोता जाता ।
ब्रह्म-रन्ध्र को भेद सड़े जब प्राण-पखेरू, स्तब्ध हुए सब । 40

तेज-पुंज नभ में विलीन था जन-मानस अतिशय मलीन था ।
यों समाधि में लीन हो गई, चिर निद्रा में सती सो गई । 41

25. प्राणायाम में सांस रोकने की क्रिया ।

भली भाँति बेद्यों ने देखा, मिली न चेतनता की लेखा ।
बस, जयकार, रुदन, क्रन्दन था, शोक-मग्न सब जन-गण-मन था । 42

चन्दन चिता चोतरे ऊँची, अगुरु-धूप धरि रची समूची ।
तापर चन्दन-लिप्त युग्म तन, थापि²⁶ बजाई गई शोक-धुन । 43

चिता-पास बाए सुत 'पातल', परिक्रमा करि पोंछा दृग-जल ।
ऊपर चुनि चन्दन की लकड़ी, दीप्त वर्तिका निज कर पकड़ी । 44

जय-ध्वनि बीच किया संकेत, गुरु ने आगी देने हेत,
साथ पड़ा गण-गीत सुनाई, बजने लगे ढोल शहनाई । 45

घृत-कपूर ले द्विज आगे बढ़ आहुति देने लगे मन्त्र पढ़ ।
बाजे बजते सभी ओर से पावक धधका जोर-शोर से । 46

लपटें करके अमित प्रकाश लगीं चूमने द्रुत आकाश ।
ज्वाला बढ़ी ताप से जिसके पुर-जन, परिजन पीछे खिसके । 47

अग्नि-शिखा का तेज बढ़ा जब, धू-धू करके क्षार हुआ सब ।
घोर कर्ण-भेदी ध्वनि छाई और ज्योति में ज्योति समाई । 48

विश्वस्ता²⁷ छोटी रानी को भली भाँति करके आश्वस्त,
रक्ष्य बताकर स्वयं अनल-कुल-देवि अनल-अंकस्थ²⁸ हुई ।
जल-कण-युक्त-कोकनद-दल से धारण किए आद्रं पृथुलाक्ष²⁹,
किन्तु मूक दोहद-व्यंजक सितवर्ण³⁰ लिए मन्दाक्ष³¹ हुई । 49

कछ दिन में, स्वकुक्षि³² में धारे ओजपूर्ण खीची-कुल-तेज,
और अधिक संरक्षण पाने महिषी भ्राता-पास गई ;

26. स्थापित करके । 27. विधवा । 28. चिता की गोद में ।
29. गीले (अश्रुपूर्ण) विषाल नेत्र । 30. गर्भवती होने का मूक संकेत करनेवाली
पाण्डुरता । 31. क्षीण दृष्टिवाली । 32. अपनी कोख ।